

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182602

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. 481

P.G.
Accession No. 171751

Author U65M

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

मर्म-स्पर्श

'हरिऔध' की अंतिम कृति

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

राजपाल एन्ड सन्स

कश्मीरी गेट

-

दिल्ली

प्रथम आवृत्ति

मूल्य : साढ़े चार रुपया

श्री राजराजेश्वरप्रसाद भार्गव द्वारा
भार्गव प्रिंटिंग वर्क्स, लखनऊ से प्रकाशित

कविता-क्रम

				पृष्ठ
१.	गुण-गान			१
२.	'स-सार' संसार			१
३.	गिरा-गौरव			२
४.	भारत-भू			२
५.	मुरली-नाद			३
६.	सबला माया			३
७.	भक्ति-भावना			४
८.	नाम-महिमा			५
९.	उपदेश			५
१०.	निर्माता-नियमन			६
११.	शक्तिमत्ता			७
१२.	जीवन-संग्राम			७
१३.	कान्त कर्तव्य			८
१४.	वर विवेक			९
१५.	भव-भक्ति			१०
१६.	उपालंभ			१०
१७.	संकट-समय			११
१८.	तर्क-वितर्क			११
१९.	विभुवर			१२
२०.	काल			१३
२१.	दुःख-भोग			१४



२२.	सहृदयता				१४
२३.	नर-सिरमौर				१५
२४.	उद्बोधन				१६
२५.	भूत-भावन				१७
२६.	भावना				१७
२७.	दिव्य दर्शन				१८
२८.	कसौटी				१९
२९.	जीवनम्				२०
३०.	प्रबोध				२१
३१.	चित्तवृत्ति				२१
३२.	मोह-महिमा				२२
३३.	विभु-विभूति				२३
३४.	जी छोटा करना				२४
३५.	प्रेम लपेटे बैन				२५
३६.	सत्पथ				२५
३७.	दिव्य दोहे				२६
३८.	सवैया				२७
३९.	दोहे				२७
४०.	सवैया				२८
४१.	छात्र				२८
४२.	सत्य सन्देश				२९
४३.	चारु चेतावनी				३०
४४.	विनीत विनय				३०
४५.	फूलों का संसार				३३
४६.	हमारा फूलों का संसार				३४
४७.	बादल की बातें				३४
४८.	वारिद-वैचित्र्य				३६



४६.	बारिबाह-बातें				३८
५०.	शारद-सुषमा				४०
५१.	शरदागम				४२
५२.	शरद्-शोभा				४४
५३.	अनुराग-राग				४६
५४.	कौन				४७
५५.	प्रभाकर प्रभुता				४८
५६.	प्रकृत सहेली				४९
५७.	चित्रपट				५०
५८.	कुसुमाकर				५१
५९.	वसन्त-सुषमा				५३
६०.	मधु-महत्ता				५३
६१.	मधुकर				५४
६२.	पादप-प्रसून				५५
६३.	कोकिल-काकली				५६
६४.	प्रभाकर				५७
६५.	लोक-ललामता				५८
६६.	गगनतल				५९
६७.	रजनी-रंजन				६०
६८.	सरोज-सरसता				६३
६९.	उत्थान				६४
७०.	निर्मम संसार				६४
७१.	तामसिकता				६५
७२.	चेतावनी				६५
७३.	रंग-भरी होली				६८
७४.	होली और देश-दशा				७०
७५.	रंग-भरी होली				७२



७६.	ढंगवाली होली				७४
७७.	मुँह की लाली				७५
७८.	रंगीली होली				७६
७९.	रंगा कपोल				७७
८०.	होली				६७
८१.	दिल के फफोले				७८
८२.	लान-तान				८०
८३.	होली				८१
८४.	शुभाशीर्वाद				८२
८५.	सरस ऊख				८३
८६.	लताड़				८३
८७.	चारु विचार				८५
८८.	कामना				८६
८९.	अछूते छींटे				८८
९०.	अनोखी उपज				९०
९१.	गुरु गौरव				९१
९२.	प्रार्थना				९२
९३.	कामना				९२
९४.	आदर्श				९३
९५.	साहवीयत				९४
९६.	शिक्षा				९५
९७.	चाह				९५
९८.	हँसी-दिल्लगी				९६
९९.	कच्चा चिट्ठा				९७
१००.	दिव्य दिवाली				९८
१०१.	दमकती दिवाली				९९
१०२.	विवाह				१००



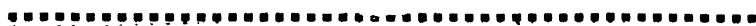
१०३.	मतलबी दुनिया				१०२
१०४.	सन्देश				१०४
१०५.	समय-सन्देश				१०५
१०६.	पते की बात				१०५
१०७.	कुल दीपक				१०६
१०८.	जागृति				१०६
१०९.	चारु चित्रपट				१०७
११०.	कला				१०८
१११.	प्रार्थना				१०९
११२.	भूतल के भारभूत				११०
११३.	उत्थान				१११
११४.	तू क्या है				११२
११५.	दीपमाला				११३
११६.	बाल-विनोद				११४
११७.	माई का लाल				११५
११८.	हमारा बचपन				११६
११९.	नया खिलौना				११७
१२०.	नटखट बालक				११८
१२१.	बालक				११९
१२२.	आर्य गौरव				११९
१२३.	रीभन्वीभ				१२०
१२४.	मंगल गान				१२०
१२५.	शिक्षा				१२१
१२६.	क्या से क्या				१२१
१२७.	दोष-दृष्टि				१२२
१२८.	पातक-रत				१२३
१२९.	वज्रपात				१२३



१३०.	सूर-सूरता				१२४
१३१.	‘रवीन्द्र’-स्वागत				१२४
१३२.	स्मारक-महत्ता				१२५
१३३.	दृग-तारे				१२६
१३४.	आँखों के आँसू				१२६
१३५.	आँसू				१२७
१३६.	नयन-विनयन				१२७
१३७.	अपने दुखड़े				१२८
१३८.	भावुकता				१२६
१३९.	कल्पना				१२६
१४०.	हृत्तन्त्री				१३०
१४१.	जीवन-ज्योति				१३०
१४२.	स्वार्थ				१३१
१४३.	स्वार्थमय संसार				१३१
१४४.	अभ्युदय				१३२
१४५.	मन का दास				१३२
१४६.	मौजी मन				१३३
१४७.	चित-चोर				१३४
१४८.	सरस समय				१३४
१४९.	शिक्षा				१३५
१५०.	उलझी गाँठ				१३५
१५१.	जी की गाँठ				१३६
१५२.	अंधाधुंध				१३६
१५३.	मन का मामला				१३७
१५४.	गौरव-गान				१३७
१५५.	भविष्य				१३८
१५६.	भव्य भारत				१३६



१५७.	निन्दित नरता				१४०
१५८.	साहसी				१४०
१५९.	सच्चा साहसी				१४१
१६०.	फटकार				१४२
१६१.	भव-पथ				१४२
१६२.	भयावह पथ				१४३
१६३.	प्रेम-पीड़ा				१४४
१६४.	निर्भीक भ्रमर				१४४
१६५.	परवशता				१४५
१६६.	स्वतंत्रता की धारा				१४५
१६७.	आँखों का न खुलना....				१४६
१६८.	न जागनेवाली जाति				१४७
१६९.	हृदय-हीनता				१४७
१७०.	आँख होते अंधा				१४८
१७१.	भव की लीला				१४८
१७२.	कुठार प्रहार				१४९
१७३.	मनोवेदना				१५०
१७४.	बात की करामात				१५१
१७५.	विजया				१५१
१७६.	पूत-पंचक				१५२
१७७.	वर-वधू				१५३
१७८.	सवैया				१५४
१७९.	कवित्त				१५५
१८०.	कामना				१५५
१८१.	हास-विलास				१५६
१८२.	मालवीय महिमा				१५७
१८३.	स्फुट कवित्त				१५९



१८४.	मौन मन की पुकार			१६२
१८५.	भारत की भारती			१६२
१८६.	कवि-कीर्ति			१६३
१८७.	अछूत			१६४
१८८.	मार्मिक उक्तियाँ			१६५
१८९.	हिमांचल-हिन्दी-भवन....			१६६
१९०.	शुभ कामना			१६६
१९१.	विजया			१६७
१९२.	तरंग से			१६७
१९३.	शुभ कामना			१६७
१९४.	कमनीय कामना			१६८
१९५.	कान्त कामना			१६८
१९६.	व्यासदेव			१६९
१९७.	गो-गौरव			१७०
१९८.	आकाशवाणी			१७२
१९९.	प्रेमा			१७२
२००.	विजया			१७३
२०१.	हिन्दी-भवन			१७३
२०२.	कीर्ति-कल्लोलिनी			१७३
२०३.	हिन्दी देवी-दिव्यता			१७४
२०४.	छात्रवृन्द की छात्रता....			१७४
२०५.	पूत-प्रशस्ति			१७५
२०६.	चातक-प्यास			१७५
२०७.	कर्मयोग			१७५



: १ :

गुण-गान

जयति अमङ्गल-मूल-निकन्दन ।

करिवर-वदन, विवेक-शुभ-सदन, ज्ञान-निकेतन, गिरिजा-नन्दन ।
चित्त-विनोदन, चारुमूर्ति, शुचितम-चर्चरत, चर्चित-चन्दन ।
विभुता-बहु-विभूति-परिपूरित, भक्ति-भरित, जग-जन-उर-स्पन्दन ।
प्रीति-पुनीत-रीति-प्रतिपालक, परिचालक सजीवता-स्यन्दन ।
कर प्रदान कमनीय सफलता, कदन विफलता अकलित क्रन्दन ।
सर्व-साधना-सिद्धि-विधायक, पात्र विबुध-बुध-जन-अभिनन्दन ।
मन-वाञ्छित-वरदान-विधाता, वराधार, आदिम-भव-वन्दन ।

: २ :

‘स-सार’ संसार

है असार संसार नहीं ।

यदि उसमें है सार नहीं तो सार नहीं है कहीं ।
जहाँ ज्योति है परम दिव्य, दिव्यता दिखाई वहीं ;
क्या जगमगा नहीं ए बातें तारक-चय ने कहीं ?
दिखलाकर अगाधता विभु की निधि-धारायें वहीं ;
कब न छुटायेँ उसकी सब छिति-तल पर छिटकी रहीं ?
दिव्य दृष्टि सामने आवरण-भीतें सब दिन ढहीं ;
अधिक क्या कहें, मुक्ति मुक्त मानव ने पाई यहीं ।

: ३ :

गिरा-गौरव

जयति गिरा देवी गौरविता ।

वाणी-वर, वीणा-वादन-रत, सकल स्वर-सलिल स्वर्गिक सरिता ।
दिव्य ज्योति अज्ञान-तिमिर की, भव-विज्ञान-ज्ञान की जननी ।
सूक्ति-निचय की सृजनकारिणी, ध्वनि-व्यंजना-बीज-वर-श्रवणी ।
सहृदयता - सरोजिनी - सरसी, जगती - मतिमत्ता की माता ।
परम प्रिया उस प्रकृत पुरुष की, जो है अखिल लोक का धाता ।
भावुकता की भूति-दायिनी प्रतिमा - कृति अनुभूति - प्रसविनी ।
विविध - कल्पना - कल्पलता - सी, भक्तवृन्द - भ्रमरावलि नलिनी ।
अखिल - कला - कुसुमालि - कुसुमता, भावों की सकलाभिरामता ।
कलित - पदावलि - प्राण - स्वरूपा, ललिता कविता की ललामता ।
संचालिका सृष्टि - रसना की, सर्व रसों की सरसा सत्ता ।
वर विवेक विधि की विधायिनी; श्रुति की महिमामयी महत्ता ।

: ४ :

भारत-भू

नाथ ! क्यों भारत-भू को भूले ?

अहह ! किसलिये उसके सुख बनते हैं बारि-बलूले ?
आहें भर-भरकर वह क्यों बहु दुख-भूले पर भूले ?
बार - बार किसलिये उसे छल - छंद-छछूँदर छूले ?
क्यों वह जलता रहे कुदव में बन पयाल के पूले ?
करो दया प्रभुवर ! पहले सम पुनः वह फले - फूले !

: ५ :

मुरली-नाद

मोहन ! मुरली-नाद सुना दो ।

अनुपम ध्वनि से निर्जीवों को, प्रभो ! सजीव बना दो ।
दिव्य गात हो, तिमिर-पुंज में जगती-ज्योति जगा दो ।
गौरव-भरे प्रगति-प्रतिपादक प्रिय गीतों को गा दो ।
तानों में रस भरकर नीरस मानस को सरसा दो ।
लय को दे लीनता अधम पर मधुर सुधा बरसा दो ।
डाल प्रभाव प्रवृत्ति पतित को सुन्दर सीख सिखा दो ।
नाथ पातकी-पुंगव को भी पावन पंथ दिखा दो ।
कपट-सहचरो कूट-नीति को देकर दंड भगा दो ।
पातक - पुंज - पहाड़ पर प्रभो, भय-पविपात करा दो ।
भारत-सुत को देश-जाति-हित का महत्त्व बतला दो ।
नवजीवन - दायिनी शक्ति जगती - जन को जतला दो ।
मंजु-भावना-मधुर गले से मति का गला मिला दो ।
जन-जन-उर-सर में विवेक-वर-वारिज-पुंज खिला दो ।

: ६ :

सबला माया

देख ली प्रभो ! तुम्हारी कला !

अभजनीय के भजने से क्यों होगा भक्त भला !
तुम हो या कि नहीं हो, इसका ठीक पता न चला ।
'अकथनीय' कह तुम्हें छुड़ाते हैं सब लोग गला ।
रंग-ढंग क्यों मिलता जब वह रँग-रँग में न दला ।

क्या 'निर्गुण', 'निरीह' है—इसको कौन सका बतला !
 जो है ममतामयी, अंक में जिसके लोक पला ।
 'अबला' हो पर प्रभु, तुमसे वह माया है सबला !

: ७ :

भक्ति-भावना

भूति अनुपम है त्रिभुवन की ।
 भक्ति - भावना भक्तजन की ।
 सुधा-धारा से है सरसा, मधुरता से है अधिक मधुर ।
 पूततम बनता है उससे मनुज का परम अपावन उर ।
 पूर्ति है अन्तर-साधन की ।
 भक्ति-भावना भक्तजन की ।
 प्रसविनी ऋद्धि-सिद्धि की है, नवों निधियों की है जननी ।
 प्रशंसित उससे बनती है सुरपुरीसम सारी अवनी ।
 क्रिया है पूत भूत तन की ।
 भक्ति - भावना भक्तजन की ।
 प्रगति उसकी है वह सरिता, परम पावन है जिसका जल ।
 पान करके जिसको मानव प्राप्त करता है वाञ्छित फल ।
 सुमति गति है मानव-मन की ।
 भक्ति - भावना भक्तजन की ।
 शान्ति को बना कृती महती, सुकृति को कर कृतकृत्य सतत ।
 सुजनता देकर सुजनों को, सदाशयता को कर हित-रत ।
 पात्र है भव-अभिनन्दन की ।
 भक्ति - भावना भक्तजन की ।

: ८ :

नाम-महिमा

राम - नाम परम धाम, भुक्ति - मुक्ति - दाता ।
भव - निधि अति पूत पोत, है त्रिलोक - त्राता ।
पाप-ताप-शमन - कुशल, कलि - मल - दल - गंजन ।
है महान् मोद - सदन, जन - मन - अनुरंजन ।
ऋद्धि - सिद्धि - प्रद, विभूति - वृद्धि का विधाता ।
लोक - विदित महामंत्र, पूत प्रकृतिपाता ।
शंकर - रसना - निमित्त रस - प्रदान - कारी ।
है मलीन मानस - मद - मोह - द्रोह - हारी ।
वैभव जन वर विवेक भक्ति - भाव - उद्गम ।
रवि समान नाशक है भव - समस्त भ्रम - तम ।

: ९ :

उपदेश

बन में गये न बात बनेगी ।
भाँग - भाँग रटते रहने से किसी समय गाढ़ी न छनेगी ।
मरु-महि में जल नहीं मिलेगा जो चित-भ्रान्ति न कूप खनेगी ।
धूप में मिलेगी क्यों छाया जो न युक्ति सुबितान तनेगी ।
ठीक हो सकेंगे शठ कैसे कटि कस जो उनसे न ठनेगी ।
जगती में निन्दित अयोग्यता बन-ठनकर भी नहीं बनेगी ।
सिद्धि-लाभ-पटुता क्यों होंगी यदि कटुता में सुमति सनेगी !

निर्माता-नियमन

देखा निर्माता का नियमन ।

नियमशील सब शक्ति-निकेतन क्यों माने उनको मेरा मन ?

पंचभूत देखा जाता है प्रायः असमय प्रलयंकर बन ।
करते हैं अनर्थ पर होता है कब उन पर समुचित शासन ?
बधिक से अधिक बध-रत निर्दय सत्पथ-पादप प्रबल प्रभंजन ।
हुए धरा में नृपति बहुत से तथा अनेकों अधमाधम जन ।

हुआ कौन से उन लोगों के लाखों निरपराध-शिर-कर्त्तन ।
हृदय-विदारण छेदन-बेधन कोटि-कोटि सदनो का विदहन ।
पलक मारते हो सकता था लोगों की रुचि का परिवर्त्तन ।
देकर उन्हें दंड उद्बोधक किन्तु हुई इसकी परवाह न ।

छिनता कौर है किसी मुँह का, किसी का लुटा जाता है धन ।
किसी का युवक सुत है मरता, है फूटता किसी का लोचन ।
कहीं तड़पती हैं बेवायें बार-बार कर-कर बहु रोदन ।
कहीं कलपते हैं बहु बालक मातृहीन हो सह-सह वेदन ।

नियमन धाता-कृपा-कोर ही से हो सकता संकट-मोचन ।
परदुख अवलोकन करके भी किया नहीं जाता अवलोकन ।
जो अनुमोदन योग्य नहीं है कैसे हो उसका अनुमोदन ?
कहे तो कहे क्या क्यों मानव कैसे हो रहस्य-उद्घाटन ?

: ११ :

शक्तिमत्ता

प्रभु तुम शक्तिमान् यदि होते !

तो अनर्थ के बीज लोक में नहीं पाप-रत बोते ।
बध-निमित्त तलवार उठाते ही यदि कर कट जाते ।
आग लगाने वाले के यदि हाथ नहीं उठ पाते ।
गाली बकने वाले की यदि जीभ मूकता पाती ।
पीड़ा पहुँचाने वाले की अगर कसकती छाती ।
लूट-पाट करते यदि पट्टी आँखों पर बँध जाती ।
गला घोटने वालों की यदि गरदन नपी दिखाती ।
पर-अपकारक की संस्कृति यदि अतिशय पीड़ित होती ।
दुख-विधायिनी मति मलीन यदि सुख की नौद न सोती ।
किये कुकर्मों के तुरंत यदि दंड मानसिक मिलता ।
पाप किये जो भयविह्वल हो तुरत कलेजा हिलता ।
तो न धरा पर बड़े वेग से शोणितधारा बहती ।
न तो बेतरह जनता पिसती विविध साँसों सहती ।
कहाँ अलौकिक प्रभु की प्रभुता, कहाँ दानवी सत्ता !
फिर भी होता है अनर्थ तो क्या प्रभु - शक्ति - महत्ता ?

: १२ :

जीवन-संग्राम

जगत्-जन-जीवन है संग्राम ।

काम नाश का जिसमें होता रहता है वसु-धाम ।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के बहु व्यापक व्यापार ।
 द्वंद्व मचाते ही रहते हैं कर-कर प्रबल प्रहार ।
 इनके शर से बिद्ध हुआ करते हैं बहु सद्भाव ।
 लगते ही रहते हैं कल कृतियों को घातक घाव ।
 ए कुसुमादपि कोमल उर पर करते हैं आघात ।
 इनके द्वारा वर विवेक पर होता है पवि-पात ।
 काल बना करती है नरता की इनकी करवाल ।
 ए देते हैं शुचि रुचि की ग्रीवा में फंदे डाल ।
 रक्तपात, बध, छेदन-बेधन है इनकी करतूत ।
 विविध अवसरों पर ये बनते रहते हैं यमदूत ।
 कलह इन्द्रियों का मन का मनमानापन मति-भ्रांति ।
 नाश शान्ति का कर करती रहती हैं कितनी क्रान्ति ।
 जो हैं संयत, आत्म-बोध के जो हैं भक्त अनन्य ।
 वे हैं जीवन-मुक्त और उनका जीवन है धन्य !

: १३ :

कान्त कर्त्तव्य

जो कर्त्तव्य-पाठ हैं पढ़ते ।

वे हैं धन्य ! पूत परमारथ-पथ में जो हैं आगे बढ़ते ।
 त्याग-मूर्ति बन जो परार्थ हैं अनुपम गौरव-गहने गढ़ते ।
 जो आगत आपत्ति-निचय को नहीं दूसरों के सिर मढ़ते ।
 देश-जाति-हित साधन-रत रह जिनके प्रगति-पाँव हैं कढ़ते ।
 क्यों न बलायें उनकी लेवें बलि-वेदी पर जो हैं चढ़ते ?

वर विवेक

कोई विभु है या है नहीं ?

बुधजन ने इस गहन विषय पर जितनी बातें सोचीं कहीं ।

वे हैं गुरु-नांभीर और हैं इतनी मार्मिकता से भरी ।
जिनको गुन मार्मिक जन ममता मति बनती है निधितरी ।

यह रहस्य वह है जिसका उद्घाटन हो न सका अद्यापि ।
ज्ञानवान् विज्ञान-विज्ञ सब भेद जान नहीं सके कदापि ।

जो हो कोई विभु होवे या हो न यह विषय है अज्ञात ।
पर विभु है इस वर विचार को प्राणी माने बने न भ्रांत ।

यह विचार ही सर्व लोक का है अनुपम जीवन-सर्वस्व ।
बिना हुए इसका अवलम्बन रह पायेगा नहीं निजस्व ।

यह विचार तम-तेज-पुंज है पोत भ्रान्त पथ-पारावार ।
सकल पुण्य कर्मों का साधन पाप-ताप पर वज्र-प्रहार ।

यह है परम अपावन-पावन पतित जनों का पूत सुधार ।
यह है सकल लोक-उपकारक है जगती-जन-जीवन-सार ।

धन्य वे सुजन हैं जो इस अनुपम विचार के हैं आधार ।
जिस के बल से बना हुआ है सारा भव उनका परिवार ।

परम धन्य हैं वे महान् जिन जिनका है कृतज्ञ संसार ।
जिनकी संस्कृति से होता है सारी संसृति का निस्तार ।

: १५ :

भव-भक्ति

भव-भक्ति है हरि-भक्ति ।

प्रेम प्राणि-समूह है विभु वास्तविक अनुरक्ति ।
सर्व भूतों में भरित है भूतपति की शक्ति ।
है सगुण संसार निर्गुण ब्रह्म की अभिव्यक्ति ।
हैं बताते बहु विबुध विज्ञान-ज्ञाता व्यक्ति ।
है अवाञ्छित सर्वदा विभुता-विभूति-विरक्ति !

: १६ :

उपालंभ

तुमको शक्तिमान क्यों मानें ?

प्रभु तुमको क्यों घट-घटवासी अंतर्दामी जानें ?
यदि प्राणी के जी की सब बातें हैं प्रभु की जानी ।
तब वह बार-बार क्यों करता रहता है मनमानी ?
पातक करना है पामरता दंडनीय है पापी ।
भला नहीं माना जाता है भव में पर-संतापी ।
फिर भी यदि तुम बुरी प्रकृति को रोक नहीं हो पाते ।
तुम्हीं समझ लो तो कैसे हो शक्तिमान कहलाते ?
रहे दबाती अन्तर्दामी को जो मानव-सत्ता ।
तो सोचें प्रभु घट-घटवासी की क्या रही महत्ता ?
मन को केवल सत्पथ का जो पथिक बनाते होते ।
तो निमग्न हो पाप-पंक में क्यों भव-प्राणी रोते ?

तुम भी उस कलंक से बचते जो हैं गये लगाये ।
कोई प्रभु, प्रभु होकर ऐसी प्रभुता क्यों दिखलाये ?

: १७ :

संकट-समय

कैसे भला ज्ञात यह होगा ?
डूबेगा अथवा बच जायेगा यह डगमग डोंगा
भोंके से है हवा बह रही बरस रहा है पानी ।
लहरें हैं बेतरह उठ रहीं कह-कह बिपत कहानी ।
थर-थर काँप रहा केवट है हाथ नहीं है चलता ।
क्या बस है बेबस का, कुसमय कब टाले है टलता ।
संकट को सामने देखकर कौन न आह भरेगा ?
“बेड़ा पार लगानेवाला” बेड़ा पार करेगा ।

: १८ :

तर्क-वितर्क

मेरा मन प्रायः कहता है—

विभु में विभुता होते नाना दुख क्यों सारा भव सहता है ?
यदि वह कर्म-भोग है उसका, तो प्रेरक है कौन दूसरा ?
जो है प्रेरक वही, कलुष से क्यों है भरित त्रिलोक की धरा ?
अच्छा होता यदि लोकों में सुख होता दुख-लेश न होता !
पाप का नहीं नाम सुनाता, बहता उमड़ पुण्य का सोता ।
धर्म-दुंदुभी बजती रहती, नहीं अधर्मानन दिखलाता ।
ज्योति सत्य की जगती होती, गला असत्यों का नप जाता ।

सदाचार का आदर होता, कदाचार सब मुँह की खाते ।
 सकल सुकर्म प्रशंसित रहते कुत्सित कर्म न कर्म कहाते ।
 होती नहीं अशान्ति दृष्टिगत सहज शान्ति पर सुमन बरसता ।
 नाम न सुनकर अविवेकों का जग विवेक का चरण परसता ।
 किन्तु सृष्टि विपरीत प्रगति है औ' यह विभु विभुतालीला है ।
 उस विभुता की जो सर्वज्ञा कहला क्या विवेकशीला है ।
 अतः किसी विभु के होने में यदि शंकाएँ की जाती हैं ।
 कैसे कहें अनर्गल उनको वे भी चिरसंचित थाती हैं ।
 प्रकृतिवादियों के तर्कों का समाधान कैसे होवेगा ।
 जो सच्चिदानन्द है वह क्यों दुःख-बीज भव में बोवेगा ?

: १६ :

विभुवर

रसिक उस रस के हैं प्यासे ।

जो सर्वस्व उन रसों का है जो हैं सरस सुधा से ।

है भव सकल सरसता जिसकी परम प्रशंसित दासी ।

जिससे होकर सिक्त, सूक्ति बनती है सुर-सरिता-सी ।

जिस के गौरव से गौरविता गिरा अधिक है होती ।

विविध विज्ञता-बीज लोक में जो प्रतिदिन है बोती ।

शिवसनकादि आदि जिसके हैं दिव्य स्वाद के ज्ञाता ।

जिस का आस्वादन करके ही वन्दित बने विधाता ।

जिससे निकल पृततम श्रुति की विश्व-व्यापिनी धारा ।

करती है भव-हित का सिंचन प्रथित प्रगति के द्वारा ।

बन जो तैल-ज्ञान-दीपक अज्ञान-तिमिर है हरता ।
 अपनी पूत विभूति सर्वदा जो भव में है भरता ।
 केवल वही भक्त जन को है भुक्ति-मुक्ति का दाता ।
 अतः 'रसो वै सः' बुध जन द्वारा विभु है कहलाता ॥

: २० :

काल

जब तक चलता है, चलता है ।
 जोवन किसे नहीं प्यारा है, मरना किसे नहीं खलता है ।
 अब हो या बहु बत्सर में हो टाले नहीं काल टलता है ।
 बालक हो या युवा, वृद्ध हो किस को नहीं छली छलता है ।
 सोच-सोचकर उसकी चालें बढ़ती चित की चंचलता है ।
 लाख व्योंत हो तेल चुक गये कभी नहीं दीया जलता है ।
 क्या होगा वह दिल कलपे जो पुलक पालने में पलता है ।
 कुछ न हो सकेगा जन जी क्यों महामोह में पड़ मलता है ।

: २१ :

दुःख-भोग

कभी न ऐसा हुआ न होगा ।
 वह दुख सदा भोगना होगा जो जाता है भोगा ।
 काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से पूरित है भव सारा ।
 इन के विविध प्रपंचों से कब किसे मिला छुटकारा ।
 मानव-तन में ये पारस हैं इन के परसे सोना ।
 बनते हैं कुधातु यदि कुत्सित मति का लगे न टोना ।

यदि न काम होता तो कैसे सृष्टि-सृजन हो पाता ।
 यदि न क्रोध होता प्रवृत्ति-पति कैसे कौन बचाता ।
 यदि न लोभ होता तो हित की ललक न रक्षित रहती ।
 यदि न मोह होता तो ममता कितनी आँचें सहती ।
 यदि मद होता नहीं आत्म-गौरव क्यों रक्षित रहता ।
 कैसे संकटमय जग में जन-जीवन-समुद निबहता ।
 कामादिक के अनुचित निन्दित घृणित प्रयोगों द्वारा ।
 अत्याचार-निरत लोगों ने ले ले अन्याय-सहारा ।
 जितने अत्याचार किये, की है जितनी निर्दयता ।
 उनको कहते बज्र-हृदय भी बार-बार है कँपता ।
 कटे करोड़ों गले, जल गये नगर, पिसी बहु जनता ।
 राज ध्वंस हो गये, देश उजड़े पर बन है बनता ।
 आज भी धरातल में ऐसे प्रलय-काण्ड हैं होते ।
 जिन्हें देख वसुधातल सहृदय-जन सुध-बुध हैं खोते ।
 सदा रहा अबनीतल ऐसा और रहेगा ऐसा ।
 जिस-से दूर तमो-गुण हो बल किसे मिला कब बैसा ।

: २२ :

सहृदयता

सहृदयता है कल्पलता ।

दोनों हैं सुफलद दोनों हैं कान्त कृत्य-अनुगता ।

इन में से कोई भी सकती है न किसी को सता ।

दोनों में लोकोपकार का मिल पाता है पता ।

इन्में यह शक्ति नहीं जो ये बतलावें धता ।
 अपनी रहन-सहन से सकती हैं यह सब को बता ।
 अपने कामों से देती हैं यह जीवों को जता ।
 है इनकी कमनीय कामना प्राणिमात्र हित-रता ।

: २३ :

नर-सिरमौर

वहां है महि में नर-सिरमौर
 नहीं छीनता रहता है जो कभी किसी के मुँह का कौर ।
 लगती बातें कह करता है वह न किसी छाती में छेद ।
 जिससे पड़े बला में कोई, नहीं खोलता है वह भेद ।
 भरी जवानी में भी उससे हो न सकेगी ऐसी भूल ।
 जिससे बने कलंकित जीवन जो हो पूत भाव प्रतिकूल ।
 पटी कपट से कभी न उसकी, उसे न छूता है छल-छंद ।
 करके सेवा सकल लोक की पाता है वह परमानंद ।
 हिंसा-प्रतिहिंसा प्रवंचना पामरता से रह कर दूर ।
 देश-जाति-हित व्रत-रत रह वह बनता है पातक-तम-सूर ।
 मुक्ति स अधिक बिभुवर की शुचि भक्ति को करेगा वह प्यार ।
 प्राणिमात्र का सुख-साधन ही होता है उसका संसार ।
 धरा-धाम में धर्म-प्राण ही जान सके हैं क्या है धर्म ।
 वह मानव-ही-मानव है जो समझ सके मानवता-मर्म ।

उद्बोधन

भ्रम-प्रमाद को दूर भगा दो ।

अंधकार में ज्योति जगा दो ॥

बहुत सो चुके आँखें खोलो । न्याय-तुला पर तन को तोलो ।

सारा मल मानस का धो लो । बीज विरद का उर में बो लो ।

ललक लोक-हित लगन लगा दो ।

अंधकार में ज्योति जगा दो ॥

सँभलो बिगड़ी बात बनाओ । भले काम कर नाम कमाओ ।

बनो वीर वीरता दिखाओ । कायरता का गला दबाओ ।

दिव्य भूतियों को न दगा दो ।

अंधकार में ज्योति जगा दो ॥

बाधाओं को विफल करो तुम । विघ्न विलोक कभी न डरो तुम ।

रग-रग में वह भाव भरो तुम । जिससे भय की भ्रान्ति हरो तुम ।

कृति-नभ में धृति-भानु उगा दो ।

अंधकार में ज्योति जगा दो ॥

जीवन रहे सजीव तुम्हारा । उसमें बहे सुधा की धारा ।

देश-जाति का हित हो प्यारा । सदा सत्य का रहे सहारा ।

मति को प्रभु-गुण गा उमगा दो ।

अंधकार में ज्योति जगा दो ॥

: २५ :

भूत-भावन

भूत-भावन हैं भव-भय-भंजन ।

पावनतम विभूति विलसित तन अखिल लोक जन-मन-अनुरंजन ।

श्रुति-सर्वस्व सूक्ति-साधन-स्वर भक्ति-मुक्ति-लिपि के वर व्यंजन ।

सकल शोक-संताप-विमोचन विविध विकार सबल दल-गंजन ।

वरद विवेक-सरोरुह-सरवर ज्ञान-नयन अति अनुपम अंजन ।

पूत भाव - व्याघात - विघातक पातक-पादप-पुंज-प्रभंजन ।

रसिक रुचिर रुचि तृप्ति-विधायक सुधा सरसतम त्वर्गिक व्यंजन ।

वे हैं वह दिवि - शरद-सुवैभव विबुध - वृंद हैं जिसके खंजन ।

: २६ :

भावना

हमारा हरा-भरा सुख-निरुवर ।

सब दिन रहे फूलता-फलता बनता रहे सरसतर ।

उसकी छाया छितितल विलसित हो हो रुचिर निरंतर ।

अर्जन करती रहे कीर्ति कहला कमनीय कलेवर ।

पा अनुकूल समीर समय पर मिले मंजुतम अवसर ।

करता रहे कार्य वह ऐसे जो हो समधिक सुंदर ।

हिले-डुले मिल गये कान्त कर अथवा बने मनोहर ।

सर्व-भूत-हित करे सर्वदा भव-विभूति से भर कर ।

दिव्य दर्शन

(१)

उषा की अनुरंजिनी विभूति
सकेगा क्यों विलोक जन्मांध ?
पयोनिधि में कोई अनभिज्ञ
किस तरह सेतु सकेगा बाँध ?

(२)

बनेगा विबुध नहीं कपिवृन्द,
न होगा पाहन कान्त प्रसून ।
न पारस ही पायेगा लौह,
सकेगा वामन नभ को छू न ।

(३)

मनोरंजन रंगों का मर्म
नहीं कह सकता नयन-विहीन ।
न होगा उसे मंजुता-ज्ञान,
जिस मनुज का मन बना मलीन ।

(४)

तिमिर-प्रेमिक उलूक किस भाँति
कहेगा क्या है तेजःपुंज !
समभत्ता नहीं प्रगति की बात
जन्म का जो मानव है लुंज ।

(५)

ओक किस से आलोकित हुए,
सके यह चर्म चक्षु न विलोक ।
सकेगी दिव्य दृष्टि ही देख,
कौन है लोक-लोक-आलोक ।

: २८ :

कसौटी

(१)

विजय के लिये किसी का उर
बेधना बड़ी क्रूरता है ।
न कोई कहीं विसूर सके
सूरता वही सूरता है ।

(२)

दंभ द्रोहादि विकारों को
क्या नहीं कहा गया है कलुष ?
दलन करना इन रिपुओं का
पुरुष का है सच्चा पौरुष ।

(३)

कहाता नारकीय जो है
कहाँ उस नर में है नरता !
बनाये जो अधीर उस में
कहाँ है धीर-धुरंधरता ।

(४)

हितू क्यों कहलाता है वह ,
जो नहीं हित बितान तनत्ता !
सुजनता है जिसमें न उसे
कहेगी क्यों न कुजन जनता !

: २६ :

जीवनम्

(१)

सुरासुराः यक्ष-पिशाच-किन्नराः ।
नदी-समुद्राः पशवो मनुष्याः ।
सरीसृपा भृङ्ग-विहङ्ग-पद्मगाः ।
सदा समिच्छन्ति विमुक्तजीवनम् ।

(२)

मनोरमं मोदमयं मनोहरम् ।
अनामयं शान्ति-निकेतनं शुभम् ।
सुखाकरं ज्ञानमयं समुज्ज्वलम् ।
बुधाः प्रशंसन्ति पवित्र जीवनम् ।

(३)

समाकुलं चंचलता-सहोदरम् ।
अशान्तिरूपं अचिरं रुजाकरम् ।
अपावनं पापमयं भयावहम् ।
न रोचते ज्ञान-विहीन-जीवनम् ।

(४)

न वंदितं येन हरेः पदाम्बुजम् ।
न सेवितं शम्भु-स्वयंभु-सेवितम् ।
न चिन्तितं येन रमा-समर्चितम् ।
अवाञ्छनीयं हि तदीय जीवनम् ।

(५)

त्वदीय गेहं च त्वदीय गेहिनी ।
त्वदीय पुत्रोस्ति त्वदीय बान्धवाः ।
त्वदीय चित्तोस्ति त्वदीय वृत्तयः ।
त्वदीय मेवास्ति मदीय जीवनम् ।

: ३० :

प्रबोध

(१)

हो गये कायापलट कुसुम
सरस फल बना दिखाता है ।
बीज मिट्टी में मिलने पर
हरिततम तरु बन जाता है ।

(२)

देखते हैं जल जलने पर
वाष्प में परिणत होता है ।
वाष्प भी वारिवाह बनकर
बहाता रस का सोता है ।

(३)

किसी नूतन पद का पाना
कहा जाता है नहीं पतन ।
पीटता है सिर क्यों कोई
मृत्यु तो है पटपरिवर्तन !

: ३१ :

चित्तवृत्ति

क्या मैं बक-बक करता हूँ !

पागल बन करके क्या मैं पागलपन का दम भरता हूँ !
तीन लोक के नायक से भी क्या मैं तनिक न डरता हूँ !
नहीं-नहीं मैं तो अपने उर की पीड़ाएँ हरता हूँ !
याद कर महाभारत—बातें किसी प्रकार उबरता हूँ !
परदुख देखे देश-जाति का पागल कान कतरता हूँ !
बेसुध होने पर सुध आये अपने आप सुधरता हूँ !
सहज भाव की नाव मिले दुख-सागर पार उतरता हूँ !

सोह-महिमा

(१)

मत्तता बढ़े मत्त मन की ।
मधु पिये मधुता मिलती है ।
विलसती है प्रतिभा-लतिका ।
कल्पना-कलिका खिलती है ।

(२)

सुधा का पता नहीं पाते ।
खोज देखी वसुधा सारी ।
वहाँ सुमधुर मधु मिलता है ।
क्यों न हो मधुशाला प्यारी !

(३)

यज्ञशाला से क्या मतलब !
सोमरस कैसे ललचा ले !
स्वर्गसुख जब मिल पाता है ।
पिये मधुशाला के प्याले ।

(४)

जिये जो पिये सोम रस के ,
क्यों पले वे पीकर प्याले !
जो सुधा रस के प्यासे थे ,
बने क्यों मधु के मतवाले !

(५)

किस तरह आँखें खुल पावें !
टल सके कैसे अधियाला !
जब मुँदी आँखें रहती हैं ,
पान कर मदिरा का प्याला !

: ३२ :

विभु-विभूति

भरा है नभतल में भरपूर ,
कौन से श्यामल तन का रंग ?
मिले किसके कर का अवलंब ,
अधर में उड़े असंख्य पतंग ?

(२)

किस अलौकिक विभु का बन भव्य ,
आरती करती है सब काल ?
जगमगाती जगतीतल-ज्योति ,
गगन में अगणित दीपक बाल !

(३)

किसे अर्पित होता है नित्य ,
उषा के अन्तर का अनुराग ?
चाँदनी खिलती मिलती है ,
लाभ कर किस का दिव्य सुहाग ?

(४)

बताता है किस को रसधाम ,
सरस घन नभ में हो समवेत ?
किया करता है उन्नत मेरु ,
उच्चता का किस की संकेत ?

(५)

किसे देते हैं पादप वृन्द ,
बहु नमित हो फल का उपहार ?
पिन्हाती हैं लतिकाँ रीझ ,
किसे कल कुसुमावलि का हार ?

जी छोटा करना

जन क्यों जी छोटा करता है !

जो जनमा वह मरा एक दिन किस को मिली अमरता !
 बड़े - बड़े योगी - सन्यासी नाना ज्ञानी - विज्ञानी ।
 कीर्ति-चाँदनी जिन लोगों ने वसुंधरा में थी तानों ।
 जिनके जप-तप-योग ज्ञान-विज्ञान आदि की गरिमार्थें ।
 केवल गिरा गान कर सकती हैं यदि गौरव से गायें ।
 जिनके परित्राणदाता शिव, धाता जिनके पाता थे
 मृत्यु के सकल मर्मों के जो बहुत बड़े विज्ञाता थे ।
 उन लोगों का नाम तक नहीं आज सुनाई देता है ।
 अहह क्यों कहें काल बली कैसे प्राणों को लेता है !
 बड़े-बड़े भूपाल जो धरातल में नहीं समाये थे ।
 जिनके गौरव-ग्रथित गीत वृन्दारक तक ने गाये थे ।
 यम भी जिनसे शंकित था, थी मृत्यु भी सहमतो जिनसे ।
 वे भी मिले धूल में, बुल्ले के समान वे भी विनसे ।
 पवि-निपात रवि पर भी होगा बचेंगे सुधाधाम नहीं ।
 तारकरहित गगनतल होगा मिल न सकेगा पता कहीं ।
 अमर कहाते जो हैं वे भी एक दिवस मर जायेंगे ।
 काल-गाल में यथा समय बन-बनकर कबल समायेंगे ।
 जीवन ऐसी पूँजी है जो पाकर खोई जाती है ।
 भव की यह लीला ही है, किसलिए दहलती छाती है !

: ३५ :

प्रेमलपेटे बैन

हौं प्रभु तुमसौं भगरो करिहौं ।
नाहिं रोईहौं ऊबि-ऊबि कै नाहिं उसासन भरिहौं ।
तन पै मन पै मम जीवन पै है अधिकार तिहारो ।
जो चाहत हौ वहै करावत का है दोस हमारो ।
का है पाप पुन्न का है किमि जीव विचारो जानै ।
जो न मोह कौ फाँस तोरिहौ कैसे तिनहिं पछानै ।
है कैसो जंजाल जगत कौ यह जानत हौ स्वामी ।
कितते केहि विधि कत इत आये पापपुंज-अनुगामी ।
विनती सुनहु कान दै मेरी मोबतिया न विचारहु ।
मोहिं तारहु 'हरिऔध' न कहि है तारि सकहु तो तारहु ।

: ३६ :

सत्पथ

समझ पर पाला कैसे पड़ा !
क्यों बनता है मनुज गँवाकर पानी चिकना घड़ा ।
बातें गढ़-गढ़ बहक-बहक क्यों बना बड़े से बड़ा ।
यदि कुढ़ंग में ढले हो सका कान न उसका खड़ा ।
क्यों वह मुँह दिखलाता है जो जन आँखों में गड़ा ।
क्यों न भला वह मुँह की खाता जो लोगों से लड़ा ।
वही गिरेगा मुँह के बल जो जायेगा गड़बड़ा ।
तब हित होगा जब सत्पथ पर दाँव रहेगा अड़ा ।

दिव्य दोहे

१

अहै ऊख की भूख नहिं, कहा सुधा सों काम ।
मीठी-मीठी वस्तु सों, है मीठो हरिनाम ।

२

नवरस है ऐसो नहीं, छरस होत है छीन ।
जो न रामरस चखत तो, है रसना रसहीन ।

३

चौंटी कन पावत रहत, पंखी तरुफल खात ।
जन कत पापी पेट हित, पाप करत न अघात ।

४

जिनको पेट न पलत कत, तिनकी खोज न लेत ।
जन कत बाको नहिं भजत, जो नित भोजन देत ।

५

सबकी भूख समान है, दुख न काहु को और ।
ते निगलत किमि कौर जे, हरत पराये कौर ।

६

प्रभु जिय मै होतो न जो, दीनजनन को प्यार ।
लहत सुदामा चार फल, क्यों दै चाउर चार ।

७

जो रिक्तवार न रीक्तो, भोरे भावन हेर ।
कैसे मीठी लगति तो, सेवरी जूठी बेर ।

८

बँधत प्रेम की डोर मैं, सहि न सकत अभिमान ।
तजि मेवे प्रभु ने कियो, विदुर-साग सनमान ।

: ३८ :

सवैया

क्यों पिसते पड़ काल-प्रकोप में, क्यों लगती अपवाद की लातें ।
क्यों बनते सविकार सुवासर होतीं न कालिमा-पूरित रातें ।
तो न तरंगित होतीं कदापि बने निधि-अंक अवैधता घातें ।
होती प्रतीति जो धी-अनुरक्ति में ज्ञात जो होतीं विमुक्ति की बातें ।

: ३९ :

दोहे

१

सुख समूह सुंदर सदन, है सब रस-आधार ।
तो किस में है सार जो—है असार संसार ?

२

खाई वस्तु समान है, होता तन अवदात ।
बतलाता है ग्रंथ-कृमि, निचय सितासित गात ।

३

हुए ज्ञान-विज्ञान-निधि वसुधा में बहु बार ।
पर भव-पारावार का, कौन पा सका पार ?

४

क्यों न करेगा वह प्रथित जन जन-जन को प्यार ।
है जिस प्रीति-निकेत का, वसुधातल परिवार ।

५

क्यों जानेगा वह कि है, लोकोत्तर परलोक ।
जो अवलोक न कर सका, लोक में न आलोक ?

: ४० :

सवैया

याद भये मन मोहन की सखियाँ मन मारि महा मुरझाइ ।
बोल न आयो उसासन के बदे आँसुन से सुधि राखि न पाई ।
ए 'हरिऔध' भई बिरहाकुल बावरी सी बनि कै बिलखाई ।
आह भरे भरि आयो गरो आँसुआन भरे आँखियाँ भरि आइ ।

: ४१ :

छात्र

किसी की उँगली का संचार ,
भर सका जिसमें बहु प्रिय राग ।
हो सका जिसमें ध्वनित सदैव ,
भूत-भावन-पावन अनुराग ।
सुनाता है भव-हित-संगीत ,
छिड़े पर जिसका अनुपम तार ।
खोल देता है हृदय-कपाट ,
सुभक्त हो जिसका भंकार ।
सुने जिसका बहुव्यंजक बोल ,
सुरुचि सकती है शुचिपग पूज ।
मानसों को करती है पूत ,
सुगुंजित हो हो जिसकी गूँज ।
पान कर जिसका रस स्वर्गीय ,
कान बन सका सुधा का पात्र ।
उस अलौकिक तंत्री का नाद ,
सुन सका कोई सहृदय छात्र ?

: ४२ :

सत्य सन्देश

१

सक्त-जन-रंजन की वर भक्ति ,
करेगी किस उर में न प्रवेश !

रुचिर जीवन न बनेगा कौन ,
सुन सुरुचिभरित सन्त-सन्देश !

२

जगेगा भला न किसका भाग्य ,
लगेगा किसे न प्यारा देश !

बनेगा कौन न शुचिता-मूर्ति ,
हृदय से सुने सन्त-सन्देश !

३

परम भयसंकुल को सब काल ,
अभय करता है वर आदेश ।

तरंगाकुल भव-सिंधु-निमित्त ,
पोत है पूत सन्त-सन्देश ।

४

दूर करता है तप अज्ञान ,
हटाता है भव-रजनी-क्लेश ।

उरों में जगा ज्ञान की ज्योति ,
भानु कर सदृश सन्त-सन्देश ।

: ४३ :

चारु चेतावनी

१

तब क्यों नहीं आँख खुलती है ,
होश क्यों नहीं आता !
जब कि पलक मारते काल का ,
रंग पलट है जाता ।
तब किसलिए अधमता करते ,
नहीं धड़कती छाती !
जब घन की छाया समान है ,
काया क्षणिक कहाती ।

२

तब क्यों लोग दूसरों को ,
दुख देते नहीं अघाते !
जब जीवन के दिवस ,
भोर के तारे हैं बन जाते ।
तब किसलिए अहित की धारा ,
हृदयों में है बहती !
जब बहु छिद्रवान घटजल सम ,
आयु छीजती रहती ।

: ४४ :

विनीत विनय

१

विराजो हृदय में मेरे श्यामसुंदर ।
सुना दो परम पूत मुरली मधुर स्वर ।
मलिनता-तिमिर से भरित है मलिन मन ।
करो दूर उसको बनो दिव्य दिनकर ।

२

नहीं सूझता है सुपथ लोचनों को
विमल ज्योति उनमें भरो प्रभु कृपा कर ।
नहीं कान सुनते कभी ज्ञान-बातें ।
सुना दो उन्हें बाँसुरी-तान विभुवर ।

३

भालो रहेगी रसज्ञा न रसना ।
बनेगा न जो नाम जपकर सरसतर ।
विमुख भक्ति से हो सहेगा बहुत दुख ।
कराओ स्वगुणगान मुख से निरंतर ।

४

करो नाथ ऐसी सुपथ पर रहे पग ।
करें काम कमनीय मेरे उभय कर ।
सुनी जाँय सब प्रार्थनायें हमारी ।
प्रभो, माँगता हूँ बिनत हो यही वर ।

५

तुम्हीं हो हृदय के हृदय श्यामसुंदर ।
बने वह न नीरस रहे वह सरसतर ।
दयापात्र कोई कहीं जो दिखाये ।
दयासिंधु तो तुम उसे दो द्रवित कर ।

६

मिले सामने जो पतनप्राय प्राणी ।
पढ़ा दो उसे पाठ तो लोकहितकर !
दिखाई पड़े ताप - उत्ताप - पीड़ित ।
उसे तो बना दो सरस रस - सरोवर ।

७

विविध दुख - दलों से दलित दृष्टिगत हो ।
उसे तो बनाओ कलित - कृति - कलेवर ।
मिले ज्वालमालाकुलित जीव जो तो ।
उसे कर दिखाओ कृपासिंधु जलधर ।

८

बुरी भावना से उसे प्रभु बचाना ।
सदा ही भले भाव से जाय वह भर ।
अधिक क्या कहें हो तुम्हीं नाथ प्रेरक ।
बनाना कभी भी उसे पवि न प्रभुवर ।

९

विराजो हृदय में मेरे श्यामसुंदर ।
सुना दो मधुर नाद मुरली मनोहर ।
दिखा मोर मोहक मुकुट मंजु आभा ।
निकच लोचनों मध्य दो दिव्य द्युति भर ।

१०

कलित कान के कुंडलों की सुझवि से ।
लुभा लो मुझे मुग्ध मन को मुदित कर ।
प्रफुल्लित करो नाथ उत्फुल्ल मुख से ।
मिले कान्ति जिसकी हुआ कल कलाधर ।

११

रिभाओ हमें मंद मुसकान द्वारा ।
बनी दिव्य जिस पर सिता हो निछावर ।
सुनो मम विनय कंज मंजुल विलोचन ।
विलोको मुझे भी सद्य बन समय पर ।

१२

कलित कंठ गत हार उरमाल्य मणिमय ।
रहे मोहता कटि परम रम्य श्रंवर ।
बने सर्वदा त्राणदाता हमारा ।
कृपानाथ आजानुलम्बित युगल कर ।

१३

रहे श्यामता व्यापिता लोचनों में ।
मलिन भूत मानस निलय का तिमिरहर ।
पतितपावनी है उसी की रुचिर रज ।
रहे पगकमल का भ्रमर चित निरंतर !

फूलों का संसार

ललिततम फूलों का संसार ।

विकसित रहता है सदैव बन, प्रकृति कंठ का हार ।
 तितली नर्तन-रत रहती है, अवलोके शृंगार ।
 उसे देख बजने लगता है, अलि-हृत्तंत्री-तार ।
 सुर-सिर पर शोभित होने का उसका है अधिकार ।
 नृप-भणि-मुकुट लाभ करता है, उससे कान्ति अपार ।
 कुसुमायुध-आयुध-प्रधानता का है वह आधार ।
 उसके बल से करता रहता है वह भव-विस्तार ।
 है कामिनी-प्रमोद-द्वार का वह वर वन्दनवार ।
 उसकी विविध सरसताओं का है वह प्रिय संभार ।
 है वह लोक-नयन-अनुरंजन, रंजनता साकार ।
 बहु प्रफुल्लकर मानस-मोहन का विचित्र व्यापार ।
 कान्त सदा बनते रहते हैं उससे सब कान्तार ।
 उससे होता है दिगन्त आमोदित सुरभि प्रसार ।
 बनता है समीर सम्मानित भूतल-छवि-आगार ।
 सज्जित सफलित कर करता है तरुलतादि सत्कार ।
 उस पर बहु छवि-रस-लोलुप तन-मन दते हैं वार ।
 है वह गुंथा प्यार-धागे में, है अतीव सुकुमार ।
 सकल लोक के लिये कुसुम है अति अनुपम उपहार ।

: ४६ :

हमारा फूलों का संसार

हमें हँसाता ही रहता है, हँस-हँस बारम्बार ।
अपनी रंगत में रँगता है, दिखा-दिखा कर प्यार ।
चित को हरता ही रहता है, बन कर सदाबहार ।
छवि से है मोहता बहाकर नयनों में रस-धार ।
हम लें तोड़ किन्तु कब उसका टूट सका हित-तार ।
है कमनीय परम कोमल वह, है अतीव सुकुमार ।
सुरभित करता है वसुधा को कर सौरभ-विस्तार ।
छिदे-बिधे, बँध गये, पिसे भी, करता है उपकार ।
वह है मोहकता-सुकंठ का परम मनोहर हार ।

: ४७ :

बादल की बातें

१

क्यों भरे रहते हैं इतने ,
लाल पीले क्यों होते हैं ?
बाँध कर झड़ी आँसुओं की ,
किसलिए बादल रोते हैं ?

२

रंग बिगड़ा जो औरों का ,
घरों में तो वे क्यों पैठे ?
ताकते मिले राह किस की ,
पहाड़ों पर पहरों बैठे ?

३

किसलिए ऊपर नीचे हो ,
चोट पर चोटें सहते हैं ?
चाट से क्यों गिरि चोटी के
चाटते तल वे रहते हैं ?

४

तरस खा कर भी कितनों को
वे बहुत ही तरसाते हैं !
कभी तर करते रहते हैं ,
कभी मोती बरसाते हैं !

५

क्यों बहुत ऊपर उठते हैं ,
किसलिए नीचे गिरते हैं ?
किसलिए देख देख उनको
कलेजे कितने चिरते हैं ?

६

कभी क्यों पिघल पसीजे रह
प्यार से वे जाते हैं भर ?
कभी क्यों गरज - गरज बादल
मारते रहते हैं पत्थर ?

७

हवा को हवा बताते या
हवा - हित के दम भरते हैं ?
भागते फिरते हैं घन या
हवा से बातें करते हैं ?

८

बरसता रहता है जल या
आँख से आँसू छनता है ?
कौन से दुख से बादल का
कलेजा छलनी बनता है ?

९

दिखा कर अपना श्यामल तन
कौन से रस से भरते हैं ?
घेरते फिरते आकर घन
किन दिलों में घर करते हैं ?

१०

जब मिले मिले पसीजे ही
सके रस बूँदों में भी ढल ।
रंग अपना क्यों पानी खो
बदलते रहते हैं बादल ?

: ४८ :

वारिद-वैचित्र्य

१

दिखाता घन है चपला कला ,
अंक में अंकित कर कल लोक ।
बनाती मंद दमक है उसे ,
ज्वालमालाबलि दिव्य प्रतीक ।

२

दुंदुभी-वादन करता है ,
भर गये उर में भूरि उमंग ।

कभी घन निज कोमल कर से,
बजाता है मृदु मंद मृदंग ।

३

घन दिवस में या संध्या-समय,
कर दिवाकर-किरणों का संग !
लाभ करता है सुरपति-चाप,
बदलता रहता है बहु रंग ।

४

मिले रवि अंतिम अंशुसमूह !
सित सिता से हो समधिक लसित ।
पैन्हती है घनमाला कभी,
लैस से टँकी साटिका असित ।

५

ललकते लोचन में कर बास,
बने कब नहीं लोक अभिराम !
दरस दिखला करते हैं मुग्ध,
सरस रस बरस-बरस घनश्याम ।

६

दिवस बनता है अमा निशीथ,
मूँह छिपा लेता है आलोक ।
दिखाता है तम रवि को आँख,
सघन घन की घनता अवलोक ।

७

सजाती है हरीतिमा अंक,
कान्ति दे उसे बना अप्सरा ।
मिले घनमाला से जल-विन्दु,
पहन मुक्ता-मालाएँ धरा ।

८

भले ही उस पर हों बहु सिंधु,
देख लें उनका बारि-बिलास ।

बुझाता है पय पिला पयोद,
पिपासित वसुंधरा-तल-भ्यास ।

६

सुधा है बसुधा-तल के लिए,
विपुल तरु-लता आदि का फलद ।
प्रणियों का है प्राणाधार,
जगत-जीवनदायक है जलद ।

१०

एक कर्त्ता है कृति है अपर,
सोच ले स्वयं सुधी की ललक ।
जनक है वारिधि वारिद-वृन्द
या कि है वारिद वारिधि-जनक !

: ४६ :

बारिबाह-बोते

१

भूमती आ रही घटाएँ हैं,
और हैं पड़ रही फुहारें भी ।
उड़ रही हैं उमंग में भर-भर,
बक-निचय की कलित कतारें भी ।

२

श्यामता देख श्याम घन-तन की
मुग्ध बक-मंडली विहरती है ।
या ध्वजा मंजु दृश्य की उड़-उड़,
कल्पना-कान्त चित हरती है ।

३

दुंदुभी का निनाद भू में भर ,
घोर रब कर उसे कँपाता है ।
या कभी घन मृदंग-वादन कर ,
मेदिनी मुग्धता बढ़ाता है ।

४

बेतरह वे भुके दिखाते हैं ,
चाहते हैं कि भूमि को छू दें ।
घूमते हैं घहर-घहर बादल ।
पड़ रही हैं छहर-छहर बूँदें ।

५

मिल गये अंतिमांशु दिनमणि के
लस घटा रंगतें दिखाती है ।
लैस द्वारा लसित असित सारी ,
दिग्वधू को कभी पिन्हाती है ।

६

रवि स्वकर से दिनान्त में उस को ,
रँग-विरंगे बसन पिन्हाता है ।
घन मिले चारु चाप सुरपति का ,
दिव्य दृश्यावली दिखाता है ।

७

मोहती है प्रकृति-चमत्कृति की ,
दिव्यतम ज्योति जगमगाती है ।
मंजु श्यामावदात घन-तन में ,
दामिनी जब दमक दिखाती है ।

है विलसती हरीतिमा-वल्लभ ,
 वीरुधों के हृदय में बसता है ।
 दूसरा कौन है सरस इतना ,
 बारिधर - रस सदा बरसता है ।

पास उसके बड़े सुखद दिन हैं ,
 हैं बड़ी रंजिनी रुचिर रातें ।
 हैं सरस, हैं सजल, तरलतम हैं ,
 रसभरे बारिबाह की बातें ।

: ५० :

शारद-सुषमा

१

लसी क्यों नवल - वधूटी सी ,
 नीलिमा नीले नभतल की ?
 रंगिणी उषा-अंक में भर ,
 लालिमा क्यों छगुनी छलकी ?

२

चन्द है मंद मंद हँसता ,
 चाँदनी क्यों यों खिलती है ?
 बता दो आज दिगवधू क्यों ,
 मंजु मुसुकाती मिलती है ?

३

बेलियाँ क्यों अलबेली बन ,
दिखाती हैं अलबेलापन ?
पेड़ क्यों लिये ढालियाँ हैं ,
फूल क्यों बैठे हैं बन - ठन ?

४

तितलियाँ नाच रही हैं क्यों ,
गीत क्यों कीचक गाते हैं ?
चहकती हैं क्यों यों चिड़ियाँ ,
मधुप क्यों मत्त दिखाते हैं ?

५

विमलसलिला सरिताएँ क्यों ,
मधुर कल-कल ध्वनि करती हैं ?
क्यों ललित लीलामय लहरें ,
मंजु भावों से भरती हैं ?

६

हिममुकुट हीरकचयमंडित ,
नगनिकर ने क्यों पाया है ?
धवलता मिस वसुधातल पर ,
क्षीर-निधि क्यों लहराया है ?

७

सर - कमलकुल लोचन खोले ,
किसे अवलोकन करते हैं ?
कान्त कूलों पर सारस क्यों ,
सरसता सहित विचरते हैं ?

८

पहन कर सजी सिता साड़ी ,
तारकाबलि मुक्ता - माला ।
आ रही है क्या विधु-वदना ,
शरद ऋतु सी सुरपुर - बाला ?

: ५१ :

शरदागम

१

प्रकृति का असिताम्बर उतरा ,
नीलिमा नभ-तल की विलसी ।
दिव हँसे दिव्य बने तारे ,
शशि-मुखी शरदाभा विकसी ।

२

घनघटा घूँघट खुल पाये ,
रंजनी रजनी बन पाई ।
समय को समुत्फुल्लता मिले ,
बहु छटा क्षिति-तल पर छाई ।

३

दर्शकों के लालायित दृग ,
गये थे उनके कर त्रिक से ।
रहे बहुजन-मन-अनुरंजन ,
सरो में अमल कमल विकसे ।

४

दिग्बधू थी विकसितवदना ,
कान्ति थी अंगों में भलकी ।
छटा क्षितितल पर छाई थी ,
छपाकर में छवि थी छलकी ।

५

तृणावलि तक थी बहु विलसित ,
पुता तरुदल पर था पारा ।
सिता की सितता के सरसे ,
सित हुआ था भूतल सारा ।

६

पुलक परिपूरित हो प्रिय रस ,
पो रहा था चक्रोर तरसा ।
बहु सरस रहा सुधाकर था ,
सुधारस वसुधा पर बरसा ।

७

सलिल था लीलामय देखे ,
रंजिनी राका रजनी पण ।
सिता की कीर्त्ति गा रहे थे ,
रजतकण बने बालुकाकण ।

८

थी पुलकती विमलाम्बुवती ,
केलि-संकुला कान्ति-भरिता ।
सरसती कल-कल रव करती ,
मंद गति से बहती सरिता ।

९

रहित प्लावन प्रपंच से हो ,
सिता को सित आभा से भर ।
बने थे कल दुकूल सरि के ,
कूल अनुकूल काल पाकर ।

१०

नयन-रंजन खंजन-दर्शन ,
खिले सरसिज सरसी-जल में ।
विदित करते थे शरदागम ,
उदित हो कुंभज नभतल में ।

११

लिये डाली में सुमनावलि ,
कर रहे थे स्वागत तरुवर ।
शरद कल-कीर्त्ति रहे गाते ,
हंसकुल विहर सरस सर पर ।

: ५२ :

शरद्-शोभा

१

प्रकृति का नीलाम्बर उतरा ,
श्वेत साड़ी उसने पाई ।
हटा घन-घूँघट शरदाभा ,
बिहँसती बसुधा में आई ।

२

मलिनता दूर हुई तन की ,
दिशाँ बनीं विकचवदना ।
अधर में मंजु नीलिमामय ,
गगनतल नवल वितान तना ।

३

चाँदनी छिटक-छिटक करके ,
छबीली बनती रहती है ।
सुधाकर-कर से वसुधा पर ,
सुधा की धारा बहती है ।

४

कहीं पर बहे दुग्ध सोते ,
कहीं पर मोती हैं ढलके ।
कहीं पर अनुपम रस बरसा ,
भव सुधा प्याला के छलके ।

५

मंजुतम गति से हीरकचय ,
निछावर करती जाती है ।

जगमगाते ताराओं में ,
थिरकती ज्योति दिखाती है ।

६

छिति-छटा फूली फिरती है ,
विपुल कुसुमावलि विकसी है ।
आज वैकुण्ठ छोड़ कमला ,
विकच कमलों में बिलसी है ।

७

पादपों के श्यामल दल ने ,
प्रभा पारद-सी पाई है ।
दिव्य हो-हो नवला लतिका ।
विभा सुरपुर से लाई है ।

८

मंद गति से बहती नदियाँ ,
मंजु रस मिले सरसती हैं ।
पा गये राका-सी रजनी ,
बीचियाँ बहुत बिलसती हैं ।

९

किसी कमनीय मुकुर-जैसा ,
सरोवर विमल सलिल वाला ।
मोहता है स्वयंकर में ले ,
विधु सहित मंजुल उडुमाला ।

१०

शरद्-गौरव नभ-जल-थल में ,
आज मिलता है आँके से ।
कीर्त्ति फैलाते हैं हिल-हिल ,
कास के फूल पताके-से ।

अनुराग-राग

१

रागमयी बन प्रकृति-बधूटी लसती क्यों है ?
अनुरंजित हो दिशासुंदरी हँसती क्यों है ?
हुआ गगनतल लाल लाभ कर किस की लाली ?
क्यों बहु बिलसित हुई उषा लोहित पटवाली ?

२

पादप किसलय सकल लालिमा क्यों पाते हैं ?
क्यों कचनार अनार ललिततम दिखलाते हैं ?
क्यों सेमल के सुमन मनोरंजन करते हैं ?
क्यों किशुक के कुसुम रक्तिमा से भरते हैं ?

३

क्यों सुहागिनी बनी बेलियाँ लहराती हैं ?
क्यों सेंदुर से भरी पत्तियाँ छवि पाती हैं ?
क्यों ईगुर है गया कुसुमकुल पर बरसाया ?
क्यों चुन्नी का चूर अधर में गया उड़ाया ?

४

क्यों गुलाल से लाल हो गया है थल सारा ?
क्यों बहती है जहाँ-तहाँ रंगों की धारा ?
खेल रहा है कौन खेल छवि क्षिति-तल छैला ?
किसका है अनुराग-राग वसुधा पर फैला ?

कौन

१

अरुण मुख रवि-सुषमा अवलोक,
रँगौली ऊषा से ले प्यार ।
कान्त कुसुमाकर से कर लाभ,
परम कमनीय कुसुम का हार ।

• २

मिल गये मंजु समय का अंक
अति सरस सुंदर दिवस विलोक ।
चल पड़े मादक मलय-समीर,
हो गये बहु सुरभित सब ओक ।

३

विपुल पुलकित दृग द्वारा देख,
हरिततम तरु नूतन परिधान ।
सुविकसित सुमन-पुंज के व्याज,
निरख कर प्रकृति-बधू मुसकान ।

४

आम की मंजरियों को चूम,
माल ले कर मानस-उन्माद ।
सुन चपल चंचरीक-गुंजार,
कान कर कोकिल-कुल-कलनाद ।

५

लोक उर में भर बहु उत्साह,
बहा जन-रग-रग में रसधार ।
विपुल कंठों को कर मधुदान,
छेड़ बह मानस-तंत्री-तार ।

६

गगन को आरंजित कर भूरि,
अवनि पर रक्तिम चादर डाल।
उड़ा कर बारंबार अबीर,
दिग्वधू का कपोल कर लाल।

७

पहुँच सेमल-पलाश के पास,
रंग-पूरित पिचकारी मार।
अनारों-कचनारों पर रीझ,
फेंक कर के कुमकुमे अपार।

८

रंग में डूबी गाती गीत,
मत्त हो चलती लटपट चाल।
कौन आती है भरी उमंग,
मंजु मुखड़े पर मले गुलाल ?

: ५५ :

प्रभाकर-प्रभुता

१

छपाकर की छबि छिनती है,
तेज-हत होते हैं तारे।
गिरि-गुहा में तम छिपता है,
बने अंधे निशिचर सारे।

२

उसे कहते दिल दुखता है,
यामिनी लुटती है जैसी।
कहें क्या ऐसी विभुता को,
प्रभाकर यह प्रभुता कैसी ?

प्रकृत सहेली

१

किस का सिर है उच्च अवनि में हिम गिरि-द्वारा ,
किस के मंजुल अंक में बही सुरसरि-धारा ?
किस के पग पर रत्न वारता है रत्नाकर ,
किस पर मुक्तादाम बरसता है धाराधर ?

२

जहाँ बारहो मास वसंत बना रहता है ,
जहाँ सदा मलयज समान मारुत बहता है ।
कुसुमावलि है जहाँ तारकावलि-सी लसती ,
जहाँ मधुरता मूर्तिमती बन कर है बसती ।

३

जिसके कानन परम कान्त हैं नंदनवन से ,
जिसके नाना विटप देवतरु से हैं बिलसे ।
होता है बहु मुग्ध विलोके जिसे पुरन्दर ,
वह कश्मीर प्रदेश स्वर्ग जैसा अति सुंदर ।

४

किसके बल से सरस बना अति कान्त कहाया ,
किसके अति कमनीय पालने में पल पाया ?
भारत-जननी से सपूत किसने उपजाये ,
लोक अलौकिक लाल कब कहाँ किसे दिखाये ?

५

यही धरा है विश्व-विभूतिमयी मणिवाली ,
सुधासिंची भव पूत भावनाओं में ढाली ।
परम सुंदरी छटामयी नयनता नवेली ।
भारतमहि है प्रकृति-वधू की प्रकृत सहेली ।

चित्रपट

१

मिले दिवाकर-कलित किरण की मालिका ,
हो बहु विलसित अचल हिमाचल हिम-निचय ।
बन जाते हैं मुकुट हीरकावलि-वलित ,
जिसके शिर के विरच ज्योति के वर बलय ।

२

सुजला सुफला शस्य श्यामला शोभना ,
विमल मयंक कला-उपेत बहु मंजुला ।
जिसकी है वसुमती मनोज्ञ कलेवरा ,
वन-उपवन कमनीय कुसुमकुल संकुला ।

३

जो कुसुमाकर विपुल भूतियों से विलस ,
नहीं बनाता मुग्ध महीतल में किसे ।
वह कश्मीर प्रदेश पुरंदरपुर सदृश ,
करता है सब काल अलौकिकतम जिसे ।

४

बनती है बन लोल लहर लीलामयी ,
सुर-सरिता की परम सरस धारा जहाँ ।
बहु विचित्रता-वलित मनोरमता-सदन ,
भारत का अति भव्य चित्रपट है कहाँ !

कुसुमाकर

१

बनाते क्यों हैं मन को मुग्ध,
गूँजते फिरते मत्त मिलिन्द,
कोंपलों से बन बन बहु कान्त,
भरे फल-फूलों से तरुवृन्द ?

२

अनारों-कचनारों के पेड़,
लाभ कर अनुरंजन का माल,
किस ललक का रखते हैं रंग,
लाल फूलों से होकर लाल ?

३

कलाएँ कौन लाल की देख,
कर रही हैं लोकोत्तर काम,
कालिमा अंक को बना कान्त,
पलाशों की लालिमा ललाम ?

४

पा गये रंजित रुचिर पराग,
किसलिये हैं पुलकित जलजात ?
मिले बहु विकसित कुसुम-समूह,
हुआ क्यों लसित लता का गात ?

५

क्यों गुलाबी रंगत में डूब,
गुलाबों में भल्लाका अनुराग ?
खिले हैं क्यों गेंदे के फूल,
बाँध कर सिर पर पीली पाग ?

६

तितलियाँ क्यों करती हैं नृत्य,
पहन कर रंग-विरंगे चीर ?
वहन कर सौरभ का संभार,
चल रहा है क्यों मलय समीर ?

७

दिशाओं को कर ध्वनित नितान्त,
सुनाता है क्यों पंचम तान ?
बनाता है क्यों बहु उन्मत्त,
कोकिलों का उन्मादक गान ?

८

याद कर किस का अनुपम रूप,
गई अपने तन की छवि भूल ?
मुसकुराई क्यों किस पर रीझ,
रंगरलियाँ कर कलियाँ फूल ?

९

हुआ क्यों बासर सरस अपार,
बनी क्यों रजनी बहु मधुमान ?
मारता है सर क्यों रतिकान्त,
कान तक अपनी तान कमान ?

१०

आ गया कुसुमाकर ले साज,
प्रकृति का हुआ प्रचुर शृंगार ।
धरा बन गई परम कमनीय,
पहन कर के कुसुमों का हार !

: ५६ :

बसन्त सुषमा

कवित्त

अलिकुल अहै केलि-रत बन पुलकित ,
द्रुम बना नवल दलों से छबिवंत है ।
मंद-मंद बहत मनोरम समीर अहै ,
सरस सुवास से सुवासित दिगंत है ।
'हरिऔध' रसिक-समूह मंजु मानस कौ ,
मोहित करत रति-कामिनी कौ कंत है ।
कंज कलितांगन में ललिता लतागन में ,
बनन में बागन में बगरथो बसंत है ।

: ६० :

मधु-महत्ता

१

कवित्त

कैसे कल कंठ कल कंठता दिखाता नहीं,
कल कंठता का तो बसंत ही विधाता है ।
कैसे मधुपावली न करती मधुर गान,
बहु मधु मधु ही से उसे मिल जाता है ।
मानती रजायसु न कैसे तरु-राजि भला,
ऋतुराज ही से राज उसे हाथ आता है ।
कैसे कुसुमायुध न बनता सनेही महा,
कुसुम अपार कुसुमाकर से पाता है ।

२

सर्वैय्या

कूकते कोकिल वैसे नहां,
अब वैसे नहीं मिलते अलि माते ।
सौरभ है मलयानिल में कहाँ,
पेड़ को वैया सजा नहीं पाते ।
वैसी रसा है कहाँ रस से भरी,
वैसे रसाल नहीं फल लाते ।
हैं उतने उत्फुल्ल न फूल तो,
क्यों हो बसंत प्रफुल्ल दिखाते !

: ६१ :

मधुकर

१

भूलता भ्रमरी को कैसे,
भाँवरें क्यों भरता फिरता ?
सुविकसित सुमन-समूहों पर
मत्त बन-बन कर क्यों गिरता ?

२

किसलिये काँटों से छिड़ता,
किसलिये तन की सुधि खोता ?
कमल में कैसे बँध जाता,
जो न मधुरत मधुकर होता ?

पादप-प्रसन्न

१

सरसता स्वाभाविकता सहित ,
बहुलता बीजों की ग्योते ।
नहीं उनको जीवन मिलता ,
जो न पादप पादप होते ।

२

मोहते किसका मानस नहीं ,
बन गये मंजुतम मनोहर ।
डालियाँ लिये फूल डाली ,
फलों से लसे हुए तरुवर ।

३

उसी से सिंचित हो-हो कर ,
कान्त बनता है उसका तन ।
सरसता मिली उसे उस से ,
सजीवन जीवन है जीवन ।

४

कभी वे खिलते मिलते हैं ,
कभी हँसते दिखलाते हैं ।
रंगतों में रँग कर अपनी ,
फूल फूले न समाते हैं ।

५

उसे तब तक क्या मिलता है ,
कली जब तक कहलाती है !
निछावर कर वह निज जीवन ,
फूल बन प्रिय फल पाती है ।

६

भूति जो है मंजुता-भरी ,
 किसे लगती है नहीं भली ?
 कौन है नहीं पुलक पाता ,
 विलोके विकसित कुसुम कली ?

७

बात क्या औरों की उससे ,
 विधाता नाता है न्यारा ।
 काम जो कुसुमायुध है तो ,
 सुमन है सुमनस का प्यारा ।

८

सुरों के सिर पर चढ़ता है ,
 विष्णु के लिए मंजुतम है ।
 कमल में रहती हैं कमला ,
 कौन कमनीय कुसुम-सम हैं ?

: ६३ :

कोकिल-काकली

१

भरी हुई है उस के उर में वेदना ,
 या कुरूपता खग को करती है विकल !
 अथवा कालापन कलपाता है उसे ,
 या दुख का दल दिल को देता है मसल !

२

रात-रात भर बोला करता है कभी ,
 अपने स्वर में भर आकुलता भूयसी !
 उसे पिलाती मधु है मधु माधुरी या
 काम-कसौटी पर रुचि जाती है कसी !

३

किंवा कुसुमाकर अनुपम आगमन की ,
उमग-उमग कर वह देती है सूचना !
या उस का गुण-गण गाता है मत्त हो ,
विपुल मुग्ध वसुधा में बहुतों को बना !

४

तन रवाव की रग बन जाती ताँत है ,
अन्तर्ध्वनि से बड़े व्यथित जन बेकली !
सुन बज उठता हृत्तंत्री का तार है ,
क्या है करुणा कलिता कोकिल-काकली !

: ६४ :

प्रभाकर

१

अरुणता अरुण नहीं पाता ,
उषा क्यों आरंजित होती ?
विभा का बीज धरातल में ,
कान्त किरणावलि क्यों बोती ?

२

गिरिशिखर क्यों शोभा पाता ,
मणि-जटित दिव्य क्रीट पा कर ?
ललित क्यों लतिकाएँ होतीं ,
मंजुतम मुक्ताओं से भर ?

३

सरि सरोवर में क्यों विछतीं ,
चादरें स्वर्णतार-विरचित ?
अंक प्राची का क्यों लसता ,
विपुल हीरकचय से हो खचित ?

४

कंठ क्यों खुलता बिहगों का
कुसुमकुल-कलिका क्यों खिलती ?
विलसता क्यों प्रभात का मुख ,
प्रभाकर-प्रभा जो न मिलती !

: ६५ :

लोक-ललामता

१

होती हैं मोहिता आँखें ,
देख लोक-ललामता ।
पा मुग्धता मनोहारी ,
उत्फुल्लता ततोधिका ।

२

है प्रभात-प्रभादात्री ,
दिग्बधू - कंठमालिका ।
लोक-लोचनता माता ,
है दिननाथ-दिव्यता ।

३

आरंजिता ललामांगी ,
है सत्कांति-सहोदरा ।
अरुणांकगता रम्या ,
है ऊषा ललिताम्बरा ।

४

है सौंदर्य समुद्भूता ,
लोचनानंददायिनी ।
है किरणावली दिव्या ,
तेजःपुंज - कलेवरा ।

५

रमणीय रसोपेता ,
सुधा-स्रोतस्विनी समा ।
कलिता कान्ति कालिन्दी ,
है कलाकान्त की कला ।

६

बनती है महाभव्या ,
भू की भूतिविधायिनी ।
दिव्य भाव भरी भाती ,
सरसाभावती सिता ।

७

देखे कान्ति कलाकान्ता ,
होती है दृष्टि मोहिता ।
हैं तारे व्योमतल के ,
दिव्य न्यारे प्रदीप से ।

८

दृश्यावलि दिखा दिव्या ,
है बढ़ाती विमुग्धता ।
नभ की नीलिमा रम्या ,
तारकावलि - संकुला ।

: ६६ :

गगनतल

है विविध रत्न-राजि-रंजित ,
है किसी सुरतरु की छाया ।
है अलौकिक विभुता-आलय ,
गगनतल लोकोत्तर काया ।

२

जगमगाते ही रहते हैं,
दिखा कर रंग-ढंग न्यारे।
सुवारे अनुपम कर के हैं,
गगनतल के अगणित तारे।

३

निशातम तामस मोचन को
प्रकृति ने दीपक हैं बाले।
न तारे हैं दिव द्युति तन में,
लसे हैं छवि बाले छाले।

४

प्रकृति जिस विभु की क्रीड़ा है,
मान उस की विभुता की कही।
सितारे हैं न रजनि कर रची,
गोटियाँ हैं जगमगा रही।

५

है अखिल वसुधा लुब्धकरी,
मंजुता सुधा-भरित प्याला।
प्रकृति के कान्त कंठ की है,
तारकावलि मुक्ता - माला।

६

पिंड हैं परम प्रभा - पूरित,
भव्य हैं, हैं भव के प्यारे।
ज्योति जगती में हैं भरते,
जगमगाते नभतल तारे।

७

समुज्ज्वल बनते हैं जिनसे,
लोकवांछित वैभव सारे।
विपुल दृग बाले विभु दृग के,
दिव्य तारे हैं दिवतारे।

८

दिवानायक ने पा दिव्यता ,
दिवस दिखला पाया दिवसमा ।
रजनि-रंजन जो होते नहीं ,
रंजिनी रजनि न बनती तमा ।

६

तमा के घोरतम तिमिर में ,
दिव्य दीपक है सकी जला ।
असित को सिता से बना सित ,
कलानिधि की कमनीय कला ।

१०

मिटायें मिट पाते नहीं कभी ,
विधाता करके अंकित अंक ।
अमा कब अमानिशा नहीं रही ,
दूर कब हुआ मयंक-कलंक !

: ६७ :

रजनी-रंजन

१

वक्र हो, हो क्षयरोग ग्रसित ,
राहु रिपु हो, हो लाञ्छित तन ।
किन्तु वसुधा निमित्त विधु ही
किया करता है सुधा-सृजन ।

२

दिखाते हैं राकापति के
राजसी भव्य भाव सारे ।
दिव्यतम राकारजनी में
जगमगाते नभतल तारे ।

३

दिव्य विधु दिव को करता है,
धरा को सिता सजाती है।
रूप-सागर लहराता है,
छवि छलकती दिखलाती है।

४

इन्दु की उपमा पाने को
विलोके गये विपुल आनन।
रहा चिरकाल ललकता ही
लोकमुख लालायित बन-बन।

५

कलानिधि वर बितान नभ में
कान्त कर से जब तनता है।
ज्योतिवसना होती है भू,
रजतकरण रजकण बनता है।

६

तमा को दिव्य बनाती हैं,
तिमिर के लिये बलायें हैं।
छबिवती सुधामयी सरसा,
कलाकर दिव्य कलाएँ हैं।

७

चौगुनी चारु बनाती है
चाँदनी बन-बन चमकीली।
विधु-छटा छाई उस पर या
छिति गई छबिकर से छीली।

८

बड़े सुंदर मोहक अनुपम,
गगन में हों मयंक अनगन।
धरा रजनी अनुरंजन रत,
हमारा है रजनी-रंजन।

६

सुधा बरसा-बरसा कर सदा ,
 रहे धोता कलंक का अंक ।
 मुसकुराता ही दिखलाये ,
 मोहता मन को रहे मयंक ।

१०

विमोहक है, विमुग्धकर है,
 कलानिधि है, बहु कला-निलय ।
 खा सके अंगारक उसका
 बदन अवलोक चकोर-निचय ।

: ६८ :

सरोज-सरसता

१

अति मंजु माधुरी सुमधु मानसों में भरे ,
 सहज विकास से विनोद हो बरसता ।
 परम रुचिर रचना हो कान्त रुचि पूत ,
 लोक चित-चारुता विलोक हो तरसता ।
 'हरिऔध' रसदान करे रस-लोलुप को
 नव राग रहे अनुराग को परसता ।
 सरस बनाये असरस भूत भूरि भाव ,
 मंजुल सरोज सी सरोज की सरसता ।

२

पा के कमलासन समान माननीय सुत,
 कमलासना के नेह धन से धनी रहे ।
 विदित विभाकर की वर बंधुता के मिले,
 विपुल विभूति में विकचता सनी रहे ।

‘हरिऔध’ कर में विराजे कमलापति के,
काल कमनीय अनुकूल अवनी रहे।
जन-मन-रंजिनी अमित मंजुता से लसे,
मंजुल सरोज की सरोजता बनी रहे।

: ६६ :

उत्थान

१

अहह ! लुट गया ओस का कोष ,
हो गया तम का काम तमाम ।
कुमुदकुल बना विनोद-विहीन ,
छिना तरु-दल-गत मुक्ता-दाम ।

२

हर गया रजनी का सर्वस्व ,
छिपा रजनी-रंजन खो मान ।
हुआ तारक-समूह का लोप ,
दिवाकर, यह कैसा उत्थान !

: ७० :

निर्मम संसार

वायु के मिस भर-भर कर आह ,
ओस मिस बहा नयन-जलधार ।
इधर रोती रहती है रात ,
छिन गये मणि-मुक्ता का हार ।

उधर रवि आ पसार कर कान्त ,
 उषा का करता है शृंगार ।
 प्रकृति है अतिशय कदुणाहीन ,
 बड़ा निर्मम है यह संसार ।

: ७१ :

तामसिकता

१

रात भर गई रुलाई ओम ,
 विहग के किये गये मुँह बंद ।
 बने बहु विवश धरा के लोग ,
 गले में पड़े आसुरी फंद ।

२

हुए घर-घर में तम अंधेर ,
 छिना रजनी का सारा साज ।
 सहस कर से तारक-चय लुटे ,
 गया रजनी-रंजन का राज ।

: ७२ :

चेतावनी

१

चौगुना हो प्रफुल्ल होली में ,
 पर बने मन कभी न मतवाला ।
 लालिमा रख सकें न जो उसकी ,
 तो बना दें न जाति-मुँह काला ।

२

खोल दिल जो गले न मिल पावें ,
तो मिला दें न मान मिट्टी में ।
खुल सके गाँठ जो नहीं जी की ,
तो पड़े गाँठ क्यों किसी जी में !

३

हो भले किसलिये करें भूलें ,
हो न सिर पर सवार नादानी ।
लोग पानी गँवा-गँवा अपना ,
क्यों किसी का उतार लें पानी !

४

हैं बड़े बाप के अगर बेटे ,
सभ्यता का गला न तो कतरें ।
है बड़ा ही कमीनापन लिखना ,
गालियों से भरी हुई सतरें ।

५

हो कपूती सवार क्यों सिर पर ,
काम करते रहें सपूतों का ।
भूल त्योहार के गले में हम ,
डाल देवें न हार जूतों का ।

६

कौन होगा अधिक अधम उससे ,
ऐंठ वह है विदग्ध रस्सी की ।
सर उठा कर पुनीत अवसर पर ,
जो कसर है निकालता जी की ।

रंग बिगड़े न रंग के खेले ,
 पी न लेवें प्रमाद का प्याला ।
 गौरवित को लताड़ गाली लिख ,
 लेखनी का करें न मुँह काला ।

८

हैं अधम-से-अधम पतिततम हैं ,
 हैं कुटिलमति कपट विटप थाले ।
 आड़ में बैठ पृत पर्वों की ,
 पेट का मल निकालनेवाले ।

९

लाल हैं क्यों न खेल लें होली ,
 लोक मुँह की बचा-बचा लाली ।
 चुटकियाँ चाल ढाल की ले ले ,
 दे बड़ों को गढ़ी हुई गाली ।

१०

खोल कर दिल गले मिलें कैसे ,
 पगड़ियाँ क्यों नहीं उझालेंगे ?
 है कसर जब कसर निकलने में ,
 क्यों नहीं तब कसर निकालेंगे ?

११

हो सकेगी न धूम को होली ,
 भंग गाढ़ी न जाय जो छानी ।
 बीज बो दें उपाधि का न कभी ,
 दे बड़ों को उपाधि मनमानी ।

१२

है बड़ा पृत पर्व होली का ,
 क्यों उसे हम बुरा बनाते हैं ।

जाति पर धूल फेंकते हैं, क्यों
धर्म को धूल में मिलाते हैं ?

१३

दिल मिलाये मिला न दिल से तो
कर सका मेल कौन किस से कब ?
जब न अनुराग-रंग चढ़ पाया ,
क्या हुआ रंग खेलने से तब ?

१४

हो सकेगा न कुछ गुलाल मले ,
सुख-घड़ी क्यों बने घड़ी दुख की ?
कालिमा है भरी हुई उर में ,
तो रहेगी न लालिमा मुख की ।

१५

रंग लायें गुलाल की मूठें ,
मोह लेवे मिठास बोली को ।
पटु रहे रीझने-रिझाने में ,
कटु ठठोली बने न होली की ।

: ७३ :

रंगभरी होली

१

उतारें पत क्यों औरों की,
बिगाड़ें क्यों बातें सारी ?
घूम जाये क्यों कोई सर ,
लगे केसर की पिचकारी ?

२

रंग लुचपन का हो जिस में,
बजावें क्यों ऐसी ताली ?
क्यों न तो उछलेगी पगड़ी,
कढ़ेगी जो मुँह से गाली ?

३

काम कर कान पकड़ने का,
मान क्यों अपना हैं खोते ?
लगा किस के मुँह में चन्दन,
किसी मुँह में कालिख पोते ?

४

रँगें क्यों काले रँगों में,
बने क्यों सुध-बुध मतवाली ?
लगायें वह गुलाल अब हम,
रहे जिस से मुँह की लाली ।

५

जाय बन जो कलंक-टीका,
भाल पर लगे न वह रोली ।
प्यार की रंगत हो जिसमें
क्यों न खेलें ऐसी होली ?

६

भरा हो हित-अवीर जिस में,
हाथ में वह भोली ले लें ।
लाज रंगीनी की रख कर,
ढंग के संग रंग खेलें ।

लगायें हम गुलाल पर वह ,
माल अनमोल थाल का हो !
चाल वह चलें न हम जिस से ,
लाल मुँह किसी लाल का हो ।

८

लोग बिगड़ा मुँह देखेंगे ,
क्यों न तो बोलेंगे बोली ?
गँवा दे क्यों अपनी रंगत ,
हमारी रंगभरी होली ?

: ७४ :

होली और देश-दशा

१

भाल पर है रोली का बिन्दु ,
कपोलों पर है लगा गुलाल ।
उड़ रहा है अबीर सब ओर ,
रंग से गात हुआ है लाल ।

२

मदभरी आँखें हैं आरक्त ,
खेलने आई हो तुम फाग ।
चढ़ा है रंगीनी का रंग ,
बनी हो मूर्तिमन्त अनुराग ।

३

किन्तु अब रहे नहीं वे लोग ,
करें जो स्वागत सहित उमंग ।
अरंजित बने सुरंजित भाव ,
चित्त के पलटे पलटा रंग ।

४

गा रही है जनता बन मत्त ,
आज दिन रागद्वेष का राग ।
कलह-कोलाहल-पूरित देश ,
लगा है रहा लाग की आग ।

५

गले मिलने से तो क्या लाभ ,
दो दिलों में न हुआ जो मेल !
पड़ी जाती है जी में गाँठ ,
बिगड़ता दिखलाता है खेल ।

६

भले भावों का हुए अभाव ,
किये कृति की अपकृति से पूर्ति ।
हो गई परम अकान्त, अदिव्य ,
तुम्हारी देवी की-सी मूर्ति !

७

रंग का रंग हुआ बदरंग ,
नहीं लसते गुलाल के थाल ।
इन दिनों मुँह लग गये अबीर ,
गँवा लाली होता है लाल ।

आ गइ हो तो होंगे क्यों न ,
 आज आरंजित कितने ओक !
 किन्तु होली में आँखें खोल ,
 तनिक लो देश-दशा अवलोक !

: ७५ :

रंगभरी होली

१

उड़ायें वह अबीर जी भर ,
 जो बने सरस जलद जैसा ।
 रहे जिस में हित की रंगत ,
 लगायें हम गुलाल ऐसा ।

२

सुनायें ऐसी तानें जो
 उमंगें भर दें जन-जन में ।
 राग ऐसे गायें जिन से ,
 देश-अनुराग भरे मन में ।

३

कुम्कुमे गोले बन चल कर ,
 कुचालें दूर करें सारी ।
 रंग जिस में सुधार का हो ,
 चले ऐसी ही पिचकारी ।

४

कसर जी की निकाल देवें,
न अपना गौरव कर दे कम।
गले मिल करें मेल सच्चा,
फूट का गला घोट दें हम।

५

गत बना दे जो औरों की,
न मुख से निकले वह गाली।
किसी की पत जिस से उतरे,
न बज पाये ऐसी ताली।

६

दिखा कर मन का मैलापन,
नीच बन कीच क्यों उछालें !
बहुत ही बुरे स्वाँग भर-भर,
फफोले क्यों दिल में डालें।

७

आप ही अपने हाथों से,
न हम परदा अपना खोलें।
लगेँ मुँह में जिन से चाँटे,
बोलियाँ क्यों ऐसी बोलें।

८

रख सके मुखड़े की लाली,
भाल पर लगी हुई रोली।
रंगतें न्यारी दिखलायें,
हमारी रंगभरी होली।

ढंगवाली होली

१

आज है धूम धमारों की ,
मचाते हैं तो क्यों ऊधम ?
उड़ाने धूल चलें तो क्यों ,
किसी की धूल उड़ायें हम ?

२

आन की आँखें हों नीची ,
बात क्यों ऐसी कह पायें ।
मान सुन जिसे कान मूँदें ,
गीत हम क्यों ऐसे गावें ?

३

बिद्वत्तें जिन से हो पायें ,
बुरी होती हैं वे बानें ।
लाज जिन से तन बिन जाये ,
लगायें क्यों ऐसी तानें ।

४

रंग में बुरी रंगतों के ,
नहीं कोई कैसे रँगता ?
गँवाई जो मुँह की लाली ,
न कैसे काजल तो लगता ?

५

सुनें सीखें आँखें खोलें ,
न उँगली कानों में दे लें ।
रंग रख कर के औरों का ,
ढंग से हम होली खेलें ।

मुँह को लाली

१

तरंगें रंग नहीं लातीं ,
उमंगें छिनीं लुटों ललकें !
नयन अवलोक नहीं पाते ,
अब छबीली छवि को छलकें !

२

कहाँ वह चहल-पहल अब है ,
कहाँ वह मस्तानापन है ?
कहाँ है धूमधाम वैसी ,
कहाँ वह मौज-भरा मन है ?

३

नहीं धिरता अवीर का घन ,
पड़ा लाला गुलाल का है ।
अब कहाँ रँगा हुआ मुखड़ा ,
दिखाता किसी लाल का है ?

४

कहाँ है गमक मृदंगों में ,
तार उतरे सितार के हैं ।
फूल सारे कुम्हलाये से ,
गले के किसी हार के हैं ।

५

बन गई क्यों इतनी नीरस ,
आज रस बरसाने वाली ?
आ गई तो आये होली ,
कहाँ है वह मुँह की लाली ?

: ७८ :

रँगोली होली

१

अरुण दिखलाया बन अरुणाभ ,
हो गया मुख प्रभात का लाल ।
बने आरंजित पादप - पुंज ,
रँग गया दिशा-सुन्दरी-भाल ।

२

गगन-मंडल में उड़ा अबीर ,
उषा आई पहने पट लाल ।
रँगोली होली को अवलोक ,
बाल-रवि निकला मले गुलाल ।

: ७९ :

रँग कपोल

१

रँग गये सेमल-कुसुम-समूह ,
बन गये सारे किंशुक लाल ।
फूल मिस फूल उठे तरु-वृन्द ,
भर गया रस से रसिक रसाल ।

२

खिले कचनार अपार प्रसून ,
हँस पड़े सब गुलाब मँह खोल ।
निकल आये दाड़िम के दाँत ,
देख होली का रँग कपोल ।

होली

१

रंग खेला चाहें खेलें ,
पर बुरी रंगत में न ढलें ।
सदा जिससे मुँह की खायें ,
गाल में वह गुलाल न मलें ।

२

प्यार जिससे पल पाता था ,
प्रीति की गाँठें थीं जुड़ती ,
रंगतें जो रख लेती थी ,
नहीं अब वह अबीर उड़ती ।

३

चले किसलिए कभी तब वह ,
आबरू गई अगर लूटी ।
उड़ाये बिना बुरे छोट ,
कहाँ पर पिचकारी छूटी !

४

नहीं हम को दिखलाती है ,
कहीं बीरों की वह टोली ,
आन के सुन्दर मुखड़े पर ,
लगावे जो मंगल-रोली ।

५

रंगीले लोगों की रग-रग ,
बीरता रहे जो न बरती ,
तलक वालों की भोली में ,
रहे तो क्यों अबीर भरती ?

६

नहीं वे डफ अब बज पाते ,
छूटतीं जिन से बद् बानें ।
जान जो मरतों में डालें ,
नहीं सुन पड़तीं वे तानें ।

७

उतरती जाती है पगड़ी ,
आबरू आँचें सहती है ।
रंग बिगड़ा ही जाता है ,
धूल उड़ती ही रहती है ।

८

देखते हैं आँखें मुँदती ,
कहाँ हम ने आँखें खोलीं ।
न पाये ख मुँह की लाली ,
हमारी होली तो हो ली ।

: ८१ :

दिल के फफोले

१

बद् गई माँग आ गई होली ,
हो उमंगे सकीं न टस से मस ।
हाँ सराबोर हो सके जिस से ,
अब बरसता कहीं नहीं वह रस ।

२

उठ लहर रंग रंग की जी में ,
अब नहीं बीज चाव के बोती ।

अब मचलतो नहीं उमंगें हैं,
अब नहीं वह चहलपहल होती।

३

हैं न उठते अबीर के बादल,
अब कहाँ वह समा दिखाता है !
अब दिशा को गुलाल उड़-उड़ कर,
लाल ही लाल कर न पाता है :

४

अब दिखाई कहीं नहीं पड़ती,
मौज में मस्त भूमती टोली ।
हैं कहाँ राग-रंग के पुतले,
अब न होली रही वही होली ।

५

अब कहाँ गान वह सुनाता है,
कान ने था कभी सुना जैसा ?
वह गमक अब न है मृदंगों में,
अब न बजता सितार है बैसा ।

६

क्या न अब पास दिल किसी के है,
क्या कहें लोग तब रहे कैसे ।
अब न वह रंगतें दिखाती हैं,
अब न होते बिनोद हैं वैसे ।

७

हौसले रंग ला सकें तब क्या,
जब बनें दिल न रसभरे कलसे ?
अब बड़े ठाठ से नहीं होते,
हर जगह राग-रंग के जलसे ।

हैं पिसी जा रहीं उमंगें सब ,
 लुट गईं राग-रंग की कानें ।
 अब कहाँ धूम है धमारों की ,
 हो चुके गीत लग चुकी तानें ।

: ८२ :

लान-तान

१

गत बनेगी न क्यों बुरी लत से ,
 पत बचेगी न गालियाँ यों गा ,
 जब कि मुँह की न रह गई लाली ,
 तब लगाये गुलाल क्या होगा ?

२

क्यों हया बेतरह मसल जाये ,
 जाय मरजाद किसलिये खोई ,
 जब रहा रंग ही बिगड़ता तब ,
 क्यों चले रंग खेलने कोई ?

३

तो भला रंग रह सकेगा क्यों ,
 जो रहें बिद अतें न बोली में ,
 पत किसी की उतारने वाली ,
 हो ठोली अगर न होली में ?

४

गालियाँ खा न गालियाँ क्यों दें,
क्यों बिना छेड़छाड़ कल वे लें,
बीर हैं प्यार बीरता से है,
क्यों न मुँह में अबीर मल वे लें?

५

हो सकेगी न चूक होली में,
जानते लोग हैं कि हैं जैसे,
जो न मुख में लगायेंगे कालिख,
लाल कुल के कहायेंगे कैसे?

६

गालियाँ हैं बुरी न होली में,
क्या हुआ है हया अगर रोती,
बन सकेगा कपूत क्यों कोई,
है सपूती सपूत में होती?

: ८३ :

होली

१

गीत गाती उमग-उमग सती,
फूल सी बात-जात में खिलती,
रंग में राग-रंग के डूबी,
मस्त हो भूमती गले मिलती।

२

रीभती नाचती चुहुल करती,
बात रस से भरी हुई कहती,
बेलियों के समान बल खाती,
लहरियों में विलास के बहती।

३

मोहती हाव-भाव से इठला ,
मन लुभाती मचल-मचल चलती ,
ऐंठती रंगरेलियाँ करती ,
छेड़ती छबि दिखा-दिखा छलती ।

४

सिर हिलाती बजा-बजा बाजे ,
तोड़ती तान पैतरे देती ,
मुँह चिढ़ाती हुई भवें मटका ,
मुसुकुराती हुई मञ्जे लेती ।

५

लाल होती गुलाल मूठों से ,
दौड़ भरती अबीर की भोली ,
रंग पिचकारियाँ चला रँगती ,
आ गई रंग खेलने होली ।

: ८४ :

शुभाशीर्वाद

१

मधुमयी कृति मंद समीरता ,
सुरभि पाकर सौरभिता रहे !
सुमन के कमनीय मरंद से ,
रसिक-वृन्द मिलिन्द विमुग्ध हो !

२

सब दिनों बहु पल्लविता मिले ,
पुलकिता फल-आकलिता रहे !
विकसिता लसिता ललिता बने ,
सरस भाव-मयी कविता-लता !

: ८५ :

सरस ऊख

१

उसे छीलो काटो पेरो , नहीं होती टस से मस है ।
नहीं वह बेकस है तो भी , बनी ही रहती बेबस है ।

२

दूसरों को रस देने में , फड़कती उसकी नस-नस है ।
मिली किस में मिठास इतनी , ऊख में भरा हुआ रस है !

: ८६ :

लताड़

१

कम नहीं हैं समझाये गये ,
बने रहते हैं चिकने घड़े ।
कान कब ँठे जाते नहीं ,
पर कहाँ कान हो सके खड़े ?

२

लड़ाका बनने की है चाह ,
पर सदा घर वालों से लड़े ।
बुरी राहें कब छोड़ी गई ,
बहुत काँटे पावों में गड़े ।

३

चाहते हैं कइलायें भले ,
लग गई है छिछोरपन-छूत ।
कहाते हैं माई के लाल ,
मगर सिर पर सवार है भूत !

४

गाँठ जो जी में पड़ पाई,
खोलने पर भी कहाँ खुली ?
बुरे जी में जो मैल जमी,
धुलाये भी वह नहीं धुली ।

५

चाल जैसी चलनी चाहें,
चलें हम वैसी ही चालें ।
बलायें अपने सिर की क्यों,
दूसरों के सिर पर डालें ?

६

भलाई औरों की देखें,
किसलिए हम जल जाते हैं ?
भागवालों के जी में क्यों,
लाग की आग लगाते हैं ?

७

किसी की मूँछ पकड़ते हैं,
किसी को आँख दिखाते हैं !
किसी का पेट काट कर हम,
किसी का गला दबाते हैं !

८

नाड़ियों में मेरी अब भी,
बदी का सोता बहता है ।
कहें क्या अपनी करतूतें,
कलेजा मलता रहता है !

चारु विचार

१

पीड़ितों की सेवा करते ,
सुजन है कभी नहीं थकता ।
सितम को सितम समझता है ,
साँसते देख नहीं सकता ।

२

निछावर करने को सब कुछ ,
क्यों नहीं वह होगा राजी ?
कलपता देख कलपते को ,
कलप उठता है जिस का जी ।

३

सामने देख काम कोई ,
कभी वह पीछे हटता नहीं ।
जगह ऐसी है कौन जहाँ ,
करतबी जा कर डँटता नहीं ?

४

कहा है सभी सपूतों ने ,
सफलता उस की थाती है ।
लाग हो जाती है जिस को ,
लगन जिस को लग जाती है ।

५

काम करने वाला कोई ,
काम अपना कर लेता है ।
भ्रमों की क्या है परवा ,
मसल वह उस को देता है ।

६

वही तो रगड़े जाते हैं,
किया करते हैं जो रगड़े।
भिभक किसको हो सकती है,
भगड़ने वालों से भगड़े।

७

सदा आगे बढ़-बढ़ अनबन,
बढ़ी का बीज न जो बोती।
लोग तो कैसे खिंच जाते,
जो नहीं खींचतान होती।

८

जगाने वाले जगा थके,
खीज ने डाँटें बतलाई।
टूट कर नोंद नहीं टूटी।
न खोले आँखें खुल पाई।

: ८८ :

कामना

१

लाभ कर परम मधुर आलाप,
सदा रह अरुचिर रुचि से रिक्त।
कथन कर सुधा से सरस वचन,
रहे होती रसना रससिक्त।

२

सुनाता रहे सप्रेम सदैव,
बना भव भक्तों को उत्कंठ।

पूततम भक्तिभाव से भरित ,
कंठ कर कान्त पदावलि कंठ ।

३

निचुड़ता रस हो जिस से प्रचुर ,
गई हो जो मृदुता पर कसी ।
बसी हो जिस में कृति कमनीय ,
वह हँसी रहे अधर पर लसी ।

४

तिमिरमय मानस में सब समय ,
भरे राका रजनी आनंद ।
जगा कर दिव्य ज्ञान की ज्योति ,
बने वर भाल चारुतम चन्द ।

५

लालसाओं में भर उल्लास ,
अधिकतर पुलकित होवे लोक ।
लगन लालायित होती रहे ,
लालिमा लोचन की अवलोक ।

६

निछावर हो जाये जन रीझ ,
सूझ पा जाये प्रिय आलोक ।
विनत बन जाये जन-अनुराग ,
नयन का वर विनयन अवलोक ।

७

प्रगति कौ मिले पूततम भूति ,
अलंकृत कर कृति आलय ओक ।

लोक हित का चित बने निकेत,
विलोचन का आलोक विलोक।

८

लगात रहें सदैव रसाल,
कभी भी बोयें नहीं बबूल।
बात बनती ही रहे न बात;
रहे मँह से भी झड़ता फूल।

: ८६ :

अछूते छींटे

१

कभी बातें बन जायेंगी,
तबीअत क्यों है घबराई ?
कहे वह ठीक-ठीक कुछ क्यों,
छू गई है जिस को बाई ?

२

चाल चलनी ही पड़ती है,
करें क्या मतलब के प्यासे !
लाल गोंटी हो जाती है।
दाँव के पड़ पाये पासे।

३

भला करता रहता है सुजन,
बिना बोले-चाले चुप रह।
कभी करता है सच्चा हित,
बात वह लाख टके की कह।

४

नहीं मुँह दिखलाते बनता ,
हो गये हैं दिन कुछ ऐसे ।
भले ही वह रह ले नीची ,
आँख ऊँची होगी कैसे ?

५

अनूठा फूल नहीं है जो ,
महँक दे-दे कर के महँके ।
जनम का वह तो है उल्लू ,
चारु चिड़ियों सा क्यों चहँके ?

६

बहकते बहुत दिखाते हैं ,
बाँकपन का दम भरते हैं ।
छिछोरे और करेंगे क्या ,
छेद छाती में करते हैं ।

७

माँगते रहते हैं टुकड़े ,
पेट जूठा खा भरते हैं ।
चटोरों की चाटे हैं बुरी ,
थूक चाटा ही करते हैं ।

८

भला होता ही रहता है ,
बला कब टलती है टाले ?
न भूलें भूलभुलैयाँ में ,
भले बन कर भोले-भाले ।

अनोखी उपज

१

हित किसी का कर सकते हैं,
तो उसे कर दें, क्यों टालें ?
बलायें अपने सिर की हम,
न औरों के सिर पर डालें ।

२

उछालें किसी की न पगड़ी,
भलाई मुख देखें भालें ।
सदा मालाएँ फूलों की,
गले में सुजनों के डालें ।

३

अगर कर सकें करें नेकी,
बदी का नाम न लें भूलें ।
फूलना-फलना देखें हम,
रहें सब दिनों फले-फूले ।

४

उड़ा कर माल दूसरों का,
भूल कर भी न पेट पालें ।
काम भलमनसाहत से लें,
चलें भलमंसी की चालें ।

५

न निकले कड़ी बात मुँह से,
किसी से कभी नहीं अकड़ें ।
ऋरे गुमराह न जो हम को,
राह हम ऐसी ही पकड़ें ।

६

छेड़ने वाले ही छेड़ें ,
पर चलायें हम कभी छुरे न ।
कहायें भले भलाई कर ,
बुराई कर हम बनें बुरे न ।

७

चलें ऐसी चालें हम जो ,
ठिकाने हम को पहुँचा दें ।
सादगी ऐसी हो जिस से ,
कहे जायें सीधे-सादे ।

८

भली से भली सधी सुधरी ,
हमारी बातें रहें सभी ।
भले ही आँखें बन्द रहें ,
पर न हम तेवर बदलें कभी ।

: ६१ :

गुरु गौरव

१

बहु पुलकित पंजाब पा गया अति उन्नत पद ।
दूर हो गया जनता का आतंक निलय गद ।
तिमिर-पुंज हट गया ज्योति अनुकूल गई जग ।
अवनति दुर्गति हुई बढ़ा उन्नति-पथ में पग ।

२

बहु अधीर मनुजात बन गये धीर-धुरंधर ।
सजग हुए निर्जीव बीर-पुंगव कायर नर ।
निपतित का पग उठा बैचाई पतितों ने पति ।
पा कर गुरु गोविन्दसिंह की गौरवमय गति ।

: ६२ :

प्रार्थना

१

हे अखिलपति विभुतानिलय विभु दूर भवभय कीजिये ।
दे दिव्य ज्ञान दयानिधे अज्ञान-न्तम हर लीजिये ।
हम देश-जाति पुनीत हित-व्रत रख सतत संयत रहें ।
अपकार से बच सर्वदा उपकार-धारा में बहें ।

२

भारत-धरा अनुरक्त रह सद्भावना में हों भरे ।
हे नियतिनाथ कदापि उर में मलिन भाव न घर करे ।
हों सब सुखित दुख से रहित सब काल हो सब का भला ।
मेरे नयन-संसार को देखें सदा फूला-फूला ।

: ६३ :

कामना

१

कुसमय बन जाये सुसमय ,
भय भगे अभय हो पाये ।
दिव दिव्य भूतियों से फिर ,
भारत - भूतल भर जाये ।

२

हों पुरुष सृजनपटु विधि से ,
शिव इव शिवता के धाता ।
कर साधन कमलापति सम ,
हों प्राणिपुंज के पाता ।

३

बनिताएँ शक्तिमती बन ,
गौरी सी हों गौरविता ।
महती मति मिले गिरा सी ,
हों पूत भाव से भरिता ।

४

जन-जन उर हो आलोकित ,
अवलोक अलौकिक भाँकी ।
घर-घर को कलित बनाये ,
कमनीय कला कमला की ।

: ६४ :

आदर्श

१

बन्द आँखों को देवें खोल ,
जगा दें उन्हें जो सकें जाग ।
सिखा दें पूत देश-हित मंत्र ,
समय पर दिखला सच्चा त्याग ।

२

न छोड़ें कभी सत्य-संसर्ग ,
हृदय में हो पुरुषार्थ-प्रतीति ।
प्राप्त कर देश-काल-अनुभूति ,
हरे भारत-भूतल की भीति ।

३

जगायें जन-जन में वह ज्योति ,
भगाये जो मानस-तम-तोम ।
जो बने राका जैसी दिव्य ,
लाभ कर इष्ट सिद्धि-व्रत-सोम ।

४

भाव समझें संस्कारों का ,
करें संस्कृति का मर्म-स्पर्श ।
फूलें-फूलें धारण कर धर्म ,
न भूलें हम अपना आदर्श ।

: ६५ :

साहबीयत

१

देख लो है सवार सिर पर हैट ,
सूट से रोज़ हो रहा है जंग ।
फबतियाँ ले सियाह-मुँह कह लो ,
कम चढ़ा है न साहबी का रंग ।

२

आप हैं कौन जानता यह कौन ,
खोलता कौन भीतरी सब भेद !
दंग हैं लोग साहबीयत देख ,
ठीक है मुँह अगर हुआ न सफेद ।

३

है चुरुट चाट चौगुनी जी में ,
बढ़ गई सूट-बूट की बाई ।
जब लगाई गई गले से तो ,
काटती नाक क्यों न नकटाई !

: ६६ :

शिन्ना

१

क्या मैं हूँ यह सुमन नहीं बतलाता फिरता ,
उस की सुन्दर सुरभि उसे है मान दिलाती ।
ऐसे ही है मनुज गुणों से पूजा जाता ,
लंबी-लंबी बात नहीं है बात बनाती ।

: ६७ :

चाह

१

बना रहे पानी मोती-सा ,
चमक-दमक प्यारी दिखलाओ ।
अपने मुँह की लाली रखकर ,
लाल ! लाल जैसा बन जाओ ।

२

तितली जैसी रखो रंगतें ,
बड़ी निरालो ललकें पाओ ।

भौरों सा रंग श्याम रंग में,
गूँज-गूँज न्यारे गुण गाओ।

३

हरा भरा रह पेड़ों जैसा,
सदा बड़े सुन्दर फल लाओ।
कोमलता वैसी ही पा कर,
कमल समान खिले दिखलाओ।

४

खेल-खेल कर खेल अनूटे,
किलक-किलक फूले न समाओ।
बोल-बोल कर प्यारी बोली,
वसुधा में कलकंठ कहाओ।

: ६८ :

हँसी-दिल्लगी

१

थी यही चाह, था यही अरमान,
किस लिये हो न औरतों में पूछ !
क्यों न मरदानापन उन्हें दे छोड़,
देख लो साफ हो गई है मूँछ !

२

मानता है न कौन मन की बात,
है कहाँ पर न मनचलों की पूछ !
वाह रे ! मैं व वाह री ! यह सुरू,
घिस गई पूँछ तो रहे क्यों मूँछ !

३

है कड़ा मोम है मुलायम संग ,
पढ़ लिया है गया निराला पाठ ।
है यही तो अजीब उलटी सूझ ,
आप हैं फूल दूसरे हैं काठ !

: ६६ :

कच्चा चिट्ठा

१

मेल को हम लगा रहे हैं लात ,
फूट के पाँव हम रहे हैं चूम ।
आज तक हम सके न कंधा डाल ,
कौन कहता है सिर गया है घूम ?

२

क्या हुआ भाड़-फूँक से ले काम ,
कर उतारा लगा तमाम भभूत !
तब भला क्यों चिमट न जाय चुड़ैल ,
जब कि सिर पर सवार ही है भूत ?

३

और को देख भागते हैं दूर ,
है पड़ी राह काटने की बान ।
फिर न क्यों हो हुआँ हुआँ सब ओर ,
आज दिन हैं रँगे सियार कहाँ न ?

४

किसलिए वे चलें न टेढ़ी चाल ,
क्यों न फुफकार से उठे दिल काँप ?
क्यों न उगलें भला ज़हर दिन-रात ,
क्या करें आस्तीन के हैं साँप !

५

आँख को खोल जाति-दुःख लें देख ,
हो न उन ते सकी कभी यह चूक ।
जो पले पाँव दूसरों का चूम ,
जो जिये चाट कर पराया थूक ।

६

जब कि सब देश हो रहा है एक ,
किसलिए तब मुनें ठगों की बात ?
चूमते लोग हैं हमारा पाँव ,
हिन्दुओं को लगे भले ही लात !

: १०० :

दिव्य दीवाली

१

क्यों नहीं लक्ष्मी रुठेगी ,
जब कि कौड़ी के तीन बने ?
मालपूआ कैसे खाते ,
न मिलते हैं मूठीभर चने !

२

बच सकेगी तब पत कैसे ,
कान जो जाते हैं कतरे !
न जुआ जो छूटा तो क्यों ,
गले पर का जूआ उतरे ?

३

जो रही सो रही भाती तो ,
किसे त्योहार कभी सहता ?
हार पर हार न जो होती ,
भाग तो क्यों सोता रहता ?

४

पास जिसके न रही कौड़ी ,
कब बना वह पैसे वाला ?
मनावें तब क्यों दीवाली ,
निकलता जब हो दीवाला ?

: १०१ :

दमकती दीवाली

१

कान्त कमला-पग-पूजन को ,
साथ में कमलावलि लाई ।
अमा में समा दिखाने को ,
जागती ज्योति जगा पाई ।

२

स्वच्छता घर-घर में भर कर ,
बिलसती हँसती दिखलाई ।
दमन करने को फैला तम ,
दमकती दीवाली आई !

: १०२ :

विवाह

१

पूततम है विधान विधि का ,
नियति का है नियमित नियमन ।
प्रकृति का है अनुपम आशय ,
वेद का वन्दित अनुशासन ।

२

वंश-वर्द्धक वसुधा-हित-रत ,
सदाचारी सपूत को जन ।
क्षेत्र में विश्व-सृजन के वह ,
सदा करता है बीज-वपन ।

३

शान्ति का है वर-आवाहन ,
सुकृति का संयत आराधन ।
मधुरता का विकास मधुमय ,
सरसता का सुंदर साधन ।

४

रमा का रंजन होता है ,
गिरा गौरवित दिखाती है ।
मंजुतमी मूर्ति त्याग की बन ,
सती सत उस से पाती है ।

५

बिलसता सुरतरु है उसमें ,
मलय - मारुत बह पाता है ।
स्वर्ग जैसा सुन्दर उससे ,
गृही का गृह बन जाता है ।

६

बालकों का विधु-सा मुखड़ा ,
नयन को कैसे दिखलाता !
सुधारस कानों में कैसे ,
मृदु वचन उनका बरसाता ।

७

अलौकिक रत्न लाभ कर क्यों ,
दिव्य जगतीतल बन जाता !
लाल माई के क्यों मिलते ,
जो न जुड़ता पावन नाता ?

८

भूति से उसकी जल - पय सम ,
एक हो जाते हैं दो मन ।
मिलाता है दो हृदयों को ,
मुक्ति-साधन विवाह-बंधन ।

: १०३ :

मतलबी दुनिया

१

सुन लें बातें जिस-तिस की ,
कब किस ने मानी किस की ?

२

है यही चाहती दुनिया ,
वह हो जिसको माने मन ।
औरों की इसके बदले ,
नप जाय भले ही गरदन !
है उसे न परवा इस की !

३

चाहें हैं मतलब वाली ,
है मतलब उन को प्यारा ।
वे तो मतलब गाँठेंगी ,
कोई मिल गये सहारा ।
वह हो अमृत या हिसकी !

४

फूलों से कोमल दिल पर ,
लगती सदमों की छड़ियाँ ।
कब भला देख पाती हैं ,
औरों के दुख की घड़ियाँ ,
पथराई आँखें रिस की !

५

तब उतर गये लाखों सर ,
जब चलीं सितम-तलवारें ।
बह गई लहू की नदियाँ ,
जब हुई करारी वारें !
पर सुनी गई कब सिसकी ?

६

है जिनका काम सताना ,
वे क्यों न लुटायें पैसे ?
जिन को पसंद है लड़ना ,
उन को होगी फिर कैसे ,
परवा डिगरी - डिसमिस की ?

७

हैं मार डालती उन को ,
सब जिन्हें नेकियाँ कहते ।
लेती हैं जानें उन की ,
जो नहीं साँसते सहते ।
पेंटे हैं गाठें विस की !

८

कुल मेलजोल पर उसका ,
है रंग चढ़ा दिखलाता ।
मतलब को धीरे-धीरे ,
सामने देख कर आता ।
कब नहीं मुरौबत खिसकी ?

६

कैसे वह यह सोचेगा ,
है अपना या बेगाना ?
काँटा निकाल देता है ,
ढूँढेगा क्यों न बहाना ,
चढ़ गई कमाँ है जिस की ?

: १०४ :

संदेश

१

भले ही हो मेरा मुख बन्द ,
सजल हग क्यों न सके अवलोक !
हाँ परम कुंठित है मम कंठ ,
क्या नहीं मुखरित मानस-ओक !

२

किसी अन्तर्दर्शी को छोड़ ,
कौन अन्तर को सका विलोक ?
तिमिरमय हो सारा संसार ,
कौन है सकल लोक-आलोक ?

३

परम नीरव हो अन्तर्नाद ,
किन्तु हैं अन्तर्यामी आप ।
मुझे है इतना भी न विवेक ,
पुण्य क्या है प्रभु क्या है पाप !

महा अद्भुत है विश्व - विधान ,
 बुद्धि क्यों उसमें करे प्रवेश !
 क्या कहूँ और कहूँ किस भाँति ,
 मौन ही मेरा है संदेश !

: १०५ :

समय-संदेश

१

रंग में अपने सब हैं मस्त ,
 हो गई दोनों आँखें बन्द ।
 इन दिनों है पसन्द यह बात ,
 गले में किसके डालें फंद ।

२

क्यों न मिल जाय धूल में जाति ,
 रसातल जाय भले ही देश ।
 कान को खोल जान पर खेल ,
 सुन सका कौन समय-सन्देश ?

: १०६ :

पते की बात

१

मसलते हुए कलेजे से ,
 मसलते नहीं कलेजे जब ।
 तब किसी के दिखलाने को ,
 निकाले गये कलेजे कब !

२

राह दिल से ही है दिल को,
प्यार ही प्यार कराता है।
लगन ही लगन लगाती है,
जोड़ता नाता नाता है।

: १०७ :

कुलदीपक

१

जो कुलदीपक बनना है तो,
बान भली बातों की डालो।
आँख खोल कर भले - बुरे को,
सोचो - समझो देखो - भालो।

२

भरा हुआ जो अधियाला है,
उसको ज्योति जगा कर ढालो।
दीपावली समान हृदय में,
देश - प्रेम का दीपक बालो।

: १०८ :

जागृति

१

बहुत सो चुके कहाँ है रात !
सँभल लो अपने अंग सँभाल।
तजो आलस, दो निद्रा त्याग,
न फिर चादर लो मुँह पर ढाल।

दिवसमणि-सा दिखला कर तेज ,
 सामने के तम को दो टाल ।
 सजग हो खोलो आँखें बन्द ,
 जाग जाओ है जागृति-काल !

: १०६ :

चारु चित्रपट

१

बहु गौरवित दिखाये जाये न गर्व से गिर ,
 सब काल हिम अचल सा ऊँचा उठा रहे शिर ।
 अविनय कुहेलिका से हो अल्प भी न मैली ,
 सब ओर सित सिता सी हो कान्त कीर्ति फैली ।

२

विलसे बने मनोहर बहु दिव्य भूत कर से ,
 संस्कृति-सरोजिनी हो सरसाति स्वत्व सर से ।
 भावे स्वकीयता हो परकीयता न प्यारी ,
 जातीयता-तुला पर ममता तुले हमारी ।

३

न विलासिता लुभाये न विभूति देख भूले ,
 कृतिकांजिनी विलोके सद्भाव - भानु फूले ।
 उसको बुरी लगन की लगती रहें न लातें ,
 न विवेक-हंस भूले निज नीर-क्षीर बातें ।

४

तनसुख - सेवार में फंस गौरव रहे न खोती ,
संसार - मानसर में मति क्यों चुगे न मोती ।
लगते कलंक को वे क्यों लाग से न धोयें ,
कैसे कुलांगनाएँ कुल का ममत्व खोयें ।

५

सारी कुभावनाएँ जायें सदैव पीसी ,
कमनीय कामनाएँ हों कल्प-बेलि की-सी ।
सुबिभूतिदायिनी हो बन सिद्धिसहचरी-सी ,
हो साधना पुनीता सब काल सुरसरी-सी ।

६

मानस मयंक जैसा हँस-हँस रहे सरसता ,
सब पर रहे सरस उर सुन्दर सुधा बरसता ।
करके विमुग्ध भव को निज दिव्य दृश्य द्वारा ,
उज्ज्वल रहे सदा ही चित्त चित्रपट हमारा ।

: ११० :

कला

१

रंजिता राका-रजनी-सी ,
बने उस से रंजन-रत मति ।
सरस बन जाये रस बरसे ,
रसिक जन की रहस्यमय रति ।

२

तामसी मानस का तम हर ,
जगाये ज्योति अलौकिकतम ।
चुराती रहे चित्त चसके ,
चमक कर चारु चाँदनी सम ।

३

सुधा बरसा बरसा बहुधा ,
करे वसुधा का बहुत भला ।
कलानिधि कान्त कला-सी बन ,
कामिनी की कमनीय कला ।

: १११ :

प्रार्थना

१

प्रबल हो गया तपन उत्ताप ,
मचाता है आतप उत्पात ।
गगन बरसाता है अङ्गार ,
हुआ पावक-पूरित क्षिति-गात ।

२

दिशाओं को करते उत्फुल्ल ,
पधारो हे नव जलधर श्याम ।
बना दो परम सरस सब ओक ,
सुधामय होवे वसुधा-धाम ।

भूतल के भार भूत

१

भीति उन की विभूति अब है ,
भूत भ्रम का भरमाता है ।
नहीं अपनी भाषा भाती ,
भेस भी काटे खाता है ।

२

भवें टेढ़ी कर देती है ,
नेटियों की भोंड़ी सूरत ।
बहुत कुढ़ता जी है देखे ,
ढोंग करने वालों की लत ।

३

भरे ही रहते हैं सब दिन ,
भड़कते हैं घर वालों से ।
बहुत चिढ़ होती है उन को ,
पुरानी सारी चालों से ।

४

सादगी उन्हें नहीं भाती ,
बनावट भरी रंगों में है ।
भलाई के पुतले वे हैं ,
बुराई भरी सगों में है ।

५

साहबी ढंग रिभाता है ,
सुरा का बड़ा सहारा है ।

साहबीयत से है पटती ,
रंग गोरा हो प्यारा है ।

६

ढंग सब उसका है अच्छा ,
भली रंगत है योरप की ।
यहाँ का सब कुछ है गंदा ,
व्यर्थ हैं बातें जप-तप की ।

७

अँधेरा भरा यहाँ पर था ,
उजाला योरप से आया ।
किन्तु पशुता न गई पशु की ,
न अब भी मानव हो पाया ।

८

भरे हैं पर के भावों से ,
भीरुताओं से हैं फूले ।
बन गये भार भूत भू के ,
भरतसुत भारत को भूले ।

: ११३ :

उत्थान

९

हिन्दुओं में हैं रंगे सियार ,
और हैं आस्तीन के साँप ।
गला चुपके देते हैं घोंट ,
कहाकर बनकर माई - बाप ।

२

सुनाता है मुँह मीठी बात ,
पेट में रहता है कुछ और ।
दिया जाता है सब कुछ किन्तु ,
छिना जाता है मुँह का कौर ।

३

देसहित के परदे में बैठ ,
जाति पर चलती है तलवार ।
प्यार का प्यारा जामा पैन्ह ,
सदा होती रहती है वार ।

४

मतलबी उन्हें कहेगा कौन ,
नहीं हैं वे मतलब के यार ।
किस तरह उबर सकेगा देश ,
जाति का लहू लें न जो गार ।

५

बचा लेवेंगे जो वे दौड़ ,
जाति की नाव पड़ी मझधार ।
किन तरह दुख समुद्र में डूब ,
देस का होगा बेड़ा पार ?

: ११४ :

तू क्या है ?

१ .

माता की आँखों का तारा ,
बाप का बहुत बड़ा दुलारा ।

सारा सुख संगी - साथी का ।
सब पड़ोस वालों का प्यारा ।

२

किसी कोख का लाल निराला ।
कितने हाथों का रस - प्याला ।
भरने वाला किसी गोद का ।
अँधियाले घर का उजियाला ।

३

फूले फूलों जैसा फूला ।
भोले - भाले पन में भूला ।
दिल का माल प्यार का पुतला ।
बहुरंगी उमंग का भूला ।

४

सुंदर बड़ा चमकता तारा ।
किसी गले का हार सँवारा ।
बड़ा फबीला बड़ा सलोना ।
तू है तीन लोक से न्यारा ।

: ११५ :

दीपमाला

१

अँधियाला है भागा जाता ,
उँजियाले ने जोत जगाई ।
वह कोने - कोने छिपता है ,
पर वह बाँ भी जगी दिखाई ।

२

जगमग जोत दिखा कर तुमको ,
वह है फूली नहीं समाई ।
प्यारे लड़के ! दीपमालिका :
दीपों की माला है लाई ।

: ११६ :

बाल-विनोद

१

रुचिर हँसना उनका अवलोक ,
न किसके जी की कलिका खिली ?
बहु मधुर भोली - भाली बात ,
कब नहीं सुधा सी सरस मिली ?

२

चूम कर उनका मोहन मुख ,
नाचने लगती हैं चाहें ।
बलायें उनकी ले ले कर ,
प्यार की खुलती हैं राहें ।

३

देख कर अति सुन्दर मुख-कान्ति ,
कान्त बनती है वपुधा ओक ।
हृदय होता है परम प्रफुल्ल ,
लाल का बाल - विनोद बिलोक ।

देखना भोलेपन के साथ ,
 हगों में भर देता है मोद ।
 उन्हें पाकर उमंग में डूब ,
 भरी रहती है मा को गोद ।

: ११७ :

माई का लाल

१

कभी लुभाता है लोगों को ,
 दिखला सूरत भोली - भाली ।
 कभी चाँद सा मुखड़ा चमका ,
 भरता है घर में उजियाली ।

२

कभी उछलता कभी कूदता ,
 कभी भाँवरें वह भरता है ।
 कभी खिलखिला कर हँसता है ,
 कभी चौंक चोना करता है ।

३

कभी किलकता दिखलाता है ,
 कभी बजाता है वह ताली ।
 कभी लाल माई का बन कर ,
 रख लेता है मुँह की लाली ।

हमारा बचपन

१

कभी हँसता [माँ का मुख देख ,
किलक कर करता कभी कलोल ।
डालता था कानों में सुधा ,
कभी वह तुतली बोली बोल ।

२

ठुमुक कर चलता था वह कभी ,
मचलता कभी मोहिनी डाल ।
फूल जैसा खिलता था कभी ,
किसी माई का बन कर लाल ।

३

चुराती किस की आँखें न थी ,
भलकती मुख पर सहज उमंग ।
खेलने में कितने ही खेल ,
दिखाता बहुरंगी बहुरंग ।

४

लाड़िला कहते उसको लोग ,
प्यार का पुतला वह था बना ।
रहा मोती से भी अनमोल ,
आँख से उस की आँसू छना ।

दुलारों के पलनों में भूल ।
 हमारा बचपन फूला-फला ।
 रहा अलबेलेपन से भरा ।
 गोद में भोलेपन के पला ।

: ११६ :

नया खिलौना

१

जब मैं हँसूँ हँसे तब वह भी ,
 जब गाऊँ तब गावे ।
 जब मैं ता ता थोई नाचूँ ,
 तब वह वाद्य बजावे ।

२

जब मैं किलकूँ तब वह किलके ,
 जब बोलूँ तब बोले ।
 मीठी बातों में मुझ सा ही ,
 वह भी मिसरी घोले ।

३

मुसका-मुसका मेरे जैसा ,
 रस की सोत बहावे ।
 खिलता मुझे देख कर वह भी ,
 फूलों सा खिल जावे ।

बाबा मेरी बातें सुन लो,
जब बजार में जाना ।
मेरे साथ खेल सब खेले,
वही खिलौना लाना !

: १२० :

नटखट बालक

१

घर में घुस कर ऊधम करता,
बछड़े खोल भगाता ।
लगा-लगा मुँह थन से पय,
गायों का है पी जाता ।
है लड़कों का कान ऐंठता,
चपतें कभी लगाता ।
कभी बंदरों-सी घुड़की,
दे दे है उन्हें डराता ।

२

ऐंठ ऐंठ बातें करता है,
भौंहें है मटकाता ।
कभी अँगूठा दिखलाता है,
मुँह है कभी चिढ़ाता ।
आँख चुराता ही रहता है,
छीन-छीन मन मेरा ।

अरी यशोदा माता सुन लें ,
नटखट बालक तेरा !

३

थोपी मार गया लड़कों को ,
काट चिकोटी उन्हें रुलाया ।
चिढ़ा गया उँगलियाँ नचा कर ,
बंदर-सा किलकिला डराया ।
घर में घुस कर धूम मचाई ,
छीन ले गया सूई - तागा ।
कैसा है यह नटखट लड़का ,
दौड़ कान में 'टू' कर भागा !

: १२१ :

बालक

रोओ मत गीतों को गाओ ।
नाच - नाच कर हमें रिझाओ ।
खेलो - कूदो हँसो - हँसाओ ।
बालक हो, बालक बन जाओ ।

: १२२ :

आर्य-गौरव

आर्य गौरव से हैं गौरवित ।
सर्व पंथ मत भू के हैं उसकी विभूति से भरित ।
उसकी पूत दिव्यता से हैं दिव्य भाव सब लसित ।
उसकी मानवता - महिमा से दानवता है त्रसित ।

सार्वभौम सिद्धान्त धरा के हैं वेद-ध्वनि-ध्वनित ।
 शान्ति-दायिनी जीवन-धारा है श्रुति-सरिता-जनित ।
 जिसकी ज्ञान-ज्योति से भू का हुआ निविड़ तम दलित ।
 वह है आर्यजाति-गुरुता की कीर्ति-कौमुदी कलित ।

: १२३ :

रीझ-खीझ

रीझने वालों के रीझे !

फूल बरस जाता है सिर पर मुँह पिटता है खीझे !
 रीझ प्यार से परिपूरित है, खीझ बुरी है होती ।
 है सुबीज से उसे प्रीति तो यह कुबीज है बोती ।
 है जो वह हित-रत तो इसकी भी अनहित है थाती ।
 है जल-सेक उसे पसंद तो यह है आग लगाती ।
 जग में रीझ-खीझ दोनों से है जनता का नाता ।
 यथासमय दोनों बनती हैं उसकी सुख-दुख-दाता ।

: १२४ :

मंगल-गान*

सदा ऐसे सुंदर दिन आवें !

जिस दिन पावन कीर्ति-गान कर पातक-पुंज भगावें ।
 विद्या-दान महान् ज्ञान का जिनके पार न पावें ।
 अंध नयन उनकी पद-रज को अंजन क्यों न बनावें ?

*—पं० मदन मोहन मालवीय की चौहत्तरवीं वर्षगाँठ पर यह कविता लिखी गई थी ।

जो जीवनविहीन जन के संजीवन-मंत्र कहावें ,
 उनकी भव-हित-रति से कैसे, लोग न लगन लगावें ?
 जिनमें मद न, मिला मोहन से जो मोहक दिखलावें ,
 उनके मधुमय वचन क्यों न बसुधा पर सुधा बहावें ?
 जो भारत भूतल जनता को सब दिन जाग जगावें ,
 उन पर कान्त प्रीति-कुसुमावलि, क्यों न सुजन बरसावें ?
 पुलकित चित से चिर जीवन क्यों उनका नहीं मनावें ,
 जिनके पूत पुण्य सुरन्तरु से वाञ्छित फल पा जावें ।

: १२५ :

शिक्षा

कहा जाता है प्रायः ऐसा !

दुख होने पर यह जाना जाता है सुख है कैसा ?
 रिक्तहस्त होने का अवगुण बतलाता है पैसा !
 सज्जन-संगति समझाती है खल होता है जैसा !

: १२६ :

क्या से क्या

किसको कौन पृछता है ?

किसके सब भावों का भव में लगता किसे पता है ?
 कुसुम समान परम कोमल उर पवि-सा है हो पाता !
 धर्म-धुरंधर भी बनता है पाप-पुँज का धाता !
 सुधा से सरस मधुर वचन वंचक बन हैं विष बोते !
 वे दृग हैं द्रव-मय बनते जो मोती रहे पिरोते !

बनी कालिका-मूर्ति प्रिय सुअन की है प्रीति दिखाती !
 कुटिल काल-पलना ललामतम ललना है बन जाती !
 उदारता प्रायः पामरता में है परिणत होती !
 सहृदयता धर रूप अधमता का है ममता खोती !
 असि वह खींचे है जो था सिर पर प्रसून बरसाता !
 मृदुल गले का हार वक्रगति पन्नग है बन जाता !
 सदा हुआ मनमान अधिक है मनमानापन प्यारा !
 है अबाधगतिवती स्वार्थ-सरिता की धारा !
 परम प्रपंची कामादिक रति है पशुता की थाती !
 मानवता को दानवता है कुमति कुनीति बनाती !
 कब क्या-से-क्या हो जाता है क्यों यह जाना जावे !
 क्यों भव-पारावार अड़ह ! अवगति पिपीलिका पावे !

: १२७ :

दोष-दृष्टि

अर्थी दोष देखता नहीं ।

कब न स्वार्थ-साधन-निमित्त उसने कटु बातें सही ?
 कोई बहुत भला हो या हो कोई बहुत बुरा ,
 कोई सुर हो अथवा असुर बना हो पीकर सुरा ,
 सब के पाँव पकड़ता है वह कह बातें दुखभरी ।
 कोई महा दानवी हो अथवा हो कोई परो ,
 जिसका मुँह देखना पाप है जो है पातक-भरा ,
 कब उसके सामने हाथ फैलाते वह है डरा ?

दाँत निकाल पेट दिखला कर परम प्रपंची बने,
 कब होती है ग्लानि उसे आँखों से आँसू छने ?
 हैं जितनी प्रवृत्तियाँ कुत्सित जितनी कृतियाँ बुरी,
 उनसे मिल उसने शुचि रुचि पर कब न चलाई छुरी ?
 दिव्य ज्ञान की ज्योति मिले क्यों है उसका सिर फिरा ?
 कैसे तब वह दोष बिलोके जब तम से है घिरा ?

: १२८ :

पातक-रत

पातकी पातक-रत होता है ।

उसके अन्तस्तल-भूतल पर बहता कलुषित रस-सोता है ।
 कभी नहीं संयम पावन जल उसका मानस-मल धोता है ।
 पड़ प्रपंच में मानव-तन-सा पारस-मणि पा वह खोता है ।
 लोभ, मोह, कामादि कुमहि में वह उन बीजों को बोता है ।
 जिनके तरुओं का फल खा वह घनता नलिनी का तोता है ।
 तिमिरमयी कुप्रवृत्ति-निशा में वह निश्चिन्त बना सोता है ।
 अहह ! उसे यह ज्ञात नहीं पवि-पात हुए पापी रोता है ।

: १२९ :

बज्रपात

कलेजा अहह क्यों न पकड़े ?

वह क्या करे शीश पर जिस के चढ़ विपत्ति अकड़े ?
 जिसके अंग-अंग साँसत के बने लदे छकड़े !
 जिसके जीवन को लेवे जंजाल-जाल जकड़े !
 जो हो संकट में निपतित पा-पा कर क्लेश बड़े !
 क्यों न प्राण वह देगा जिसके सिर पर बजू पड़े ?

: १३० :

सूर-सूरता

साहसी सूर कहाता है ।

कंपितकर रण-दृश्य देखकर देख न पाता है ।
होता हो पविपात उसे परवाह नहीं होती ।
है उसकी कृति कायरता अपनी सारी खोती ।
उसका तेजःपुंज रणांगण का तम है हरता ।
उसका कर सब काल कपाल-क्रिया ही है करता ।
रिपु-समूह को है उसका उत्ताप बहु तपाता ।
है निर्जीव सजीव जनों का वह जीवन-दाता ।

: १३१ :

‘रवीन्द्र’-स्वागत

सादर स्वागत हम करती हैं ।

अर्पण को कुसुमालि भाव के भावुकतांजलि में भरती हैं ।
राका-रजनीं-सी सु-उक्तियाँ स्त्रीकृति मानस में बसती हैं ।
कवि-कुल-कुमुद-कलाधर की कल-कीर्ति-कौमुदी से लसती हैं ।
आँखें विनय-बारि-बूँदों से सत्कृति-मुक्तावलि जनती हैं ।
सुन कमनीय कला की महिमा भक्ति-सुधा-सिंचित बनती हैं ।
गुण-गौरव-वारिधि में रुचियाँ सरिताओं समान मिलती हैं ।
दर्शन कर रवीन्द्र-से रवि का कान्त कमलिनी-सम खिलती हैं ।

स्मारक-महत्ता

१

किसी स्मरणीय पुरुष का स्मारक ।

है विस्तारक कान्त कीर्ति का है नितान्त उपकारक ।

धर्म-धुरीण धारणा का है धरणी में अवधारक ।

नीति-निकेतन लोक-निचय का है नैतिक निस्तारक ।

धीर भाव से है विस्मृति वैभव व्यापार-विदारक ।

किसी सुजन के सद्भावों का है चिरकाल-प्रसारक ।

है भव-जनता-हित चिन्तन-रत है संकट-संहारक ।

विविध-प्रपंचों में भी वह है शुचि रुचि रुचिर प्रसारक ।

२

किसी स्मारक का आयोजन ।

किसी भक्ति-भाजन प्राणी का भावसहित है यजन ।

उपकृत का उपकारक प्रति है कृतज्ञता-आकलन ।

श्रद्धा के कमनीय क्षेत्र में श्रेय-बीज है बपन ।

ख्याति-सुंदरी के आवाहन का है अनुपम सदन ।

किसी कान्ततम आनन का है परम मनोहर कथन ।

है सम्मानित जन का आदरसूचक विलसित वचन ।

सुजन-सुजनता का है सम्बल, है शठ-शठता-शमन ।

मानवता की मोहकता का है महिमामय मनन ।

सुरवाटिका-सदयता का है पारिजात-सा सुमन ।

: १३३ :

दृग-तारे

हमारी आँखों के तारे ।

परम सहारे जीवन के हैं बहुत अधिक हैं प्यारे ।
यदि ये होते नहीं सूर तो हमें सूर दिखलाता ।
असित कलंक-अंक में तम-अंकित मयंक मिल जाता ।
ज्योति-निकेतन नभतल-तारे ज्योति-विहीन दिखाते ।
अपर जगमगाने वाले जगमग करते न जनाते ।
घर का दीप्तिमान दीपक भी दीप्ति-रहित बन पाता ।
सकल दिव्यताओं से रहता नहीं दृगों का नाता ।
जिस प्रभु-दयादृष्टि से दृग को मिली दिव्यता न्यायी ।
जो न बना वह उसके पद-रज-दर्शन का अधिकारी ।
यही कहेंगे तो उसको भव-माया ने है घेरा !
मिले दिव्यता भी दृग के सम्मुख है अधिक अधेरा ।

: १३४ :

आँखां के आँसू

कहाँ आँखों के आँसू सूखे ?

कैसे बतलायें भारत-वासी कितने हैं भूखे ?
कभी रहे जो धन-कुबेर वे आज हो गये खूखे ।
सगे भी नहीं सगे रह गये, सभी बन गये रूखे ।
कोई जो कुछ हित करता है, तो वह काँखे-कूँखे ।
नाव भँवर में पड़ी प्रभो है, खे पावे तो तू खे !

: १३५ :

आँसू

कहाँ से क्यों तुम निकल पड़े ?

पानी क्यों बिगाड़ते हो बन-बन कर चिकने घड़े !
बहुत द्रवित तुम दिखलाते हो, हो तुम तरलित बड़े ।
फिर क्यों तुम्हें पतन प्रिय है क्यों हो आँखों में गड़े ?
तुम को अवलोकन कर आकुल हो प्रवाह पर अड़े ।
कौन थामता नहीं कलेजा कानों को कर खड़े ?
कौन लाभ होता है प्रायः भरनों जैसा भड़े ?
क्या साँसतें बहुत होती हैं दुख पा-पा कर कड़े ?
होते हैं अति अप्रिय अरुचिकर चपत दुखों के जड़े ।
किन्तु पार पा सका कौन विधि के प्रपंच से लड़े ?

: १३६ :

नयन-विनयन

आँख से आँसू क्यों निकले ?

क्यों न तिमिर में दिव्य ज्योति उसकी दीपक सी बले ?
जो निकले तो उसकी बूँदें मुक्तावलि सी लसी ,
बने हार उस वीर कंठ का जो होवे साहसी ।
तार बँधे उसकी धारायें हों इतनी बलवती ,
बह जाये प्रवाह में जिसके पाशव व्रत का व्रती !
बरौनियों के नोकों में जो वह दिखलाई पड़े ,
तो उसको अवलोक पातकी के रोयें हों खड़े ।

जो कोई कपोल उसके गिरने से विलसित बने ,
तो ममतामय मानस-नभ में चारु चाँदनी तने ।
और कुछ अधिक आगे बढ़ जो वह मिट्टी में मिले ,
तो उसको अवलोक कलेजा पाहन का भी हिले ।
सलिल को न वह रोक सकेगा दुख जायेंगे हरे ,
फिर क्यों नहीं नयन-नय-रत रह विनयन भाजन भरे !

: १३७ :

अपने दुखड़े

न आँखें खुल पाई खोले ।

रोना हो तो जाति भले ही फूट-फूट कर रोले ।
पड़ते ही रहते हैं अब भी दिल में बुरे फफोले ,
जिनकी टपक बहुत खलती है हाथ सुखों से धो ले ।
भला करे क्या कोई ऐसे दुबले-पतले को ले ,
तनिक हवा के लगे सदा जो तिनकों जैसा डोले ।
डोंग हाँकते रहते हैं पर भीतर से हैं पोले ,
भला क्यों न मूँह की खायेंगे ऐसे भूले भोले ।
विपत ढाहते रहते हैं औरों के बुरे बतोले ,
छिनते हैं अधिकार हमारे दबे बिना ही बोले ।
सूखी हरी-भरी हित खेती बरसे अनहित ओले ,
मेलजोल-गढ़ चूर हो चुके चले बैर-बमगोले ।
कैसे नहीं उजड़ते सुरपुर जैसे सुंदर टोले ,
अपना जब अपने हाथों से ही रस में विष घोले ।
सारा भेद खुल गया सब पर जब हम गये टटोले ,
सोने से तुल आज जा रहे हैं कौड़ी से तोले ।

: १३८ :

भावुकता

भावमय भावुक भावुकता ।

वह विभूति है जिसे प्राप्त कर अधिक हुई भव की उत्सुकता ।
पद निर्जीव सजीव हो गये पंक्ति-पंक्ति में जीवन आया ।
बनी सरसता मिले सरसतम कागज की अति नीरस काया ।
लिपि की भी ललाट-लिपि बदली पा अनुभूति-निकेत-निकाई ।
मसि कालिमा-कलंक-रहित हो सूक्ति लालिमा-लसित दिखाई ।
दिव्य ज्योति दे - दे उसने आराधक - मानस - तिमिर भगाया ।
बन-बन किसी तप्त मानव के सिर की तरु कोमलतम छाया ।
प्रीति-प्रतीति पुनीत नीति है उसकी प्रिय से प्रिय परिपाटी ।
उसके द्वारा जन-कुनीति है प्रायः प्रतिदिन जाती डाँटी ।
भरी हुई है उसकी रग-रग में भूतल की भूरि भलाई ।
हैं विभूतियाँ न्यारी उसकी है उसकी कमनीय कमाई ।

: १३९ :

कल्पना

कल्पना कल्प-लता सी है ।

लोकलालसा-पूर्ति-मूर्ति है फल-प्रदान की प्यासी है ।
किसी अकल्पनीय की ही है कान्त कल्पना नभमंडल ।
अगणित तारक-चय आलोकित भव का अद्भुत रम्य स्थल ।
विविध विचित्र जीव-परिपूरित बहु विभूतियों का आकर ।
अवनीतल भी बन पाया है उठे कल्पना का ही कर ।

कवि-कुल-कला विवेक-शीलता महिमामय जन-मतिमत्ता ।
 विबुध विबुधता आदिक में है कलित कल्पना की सत्ता ।
 प्रकृति चारुतम चित्रपटादिक से है उसका प्रिय नाता ।
 है कल्पना अलौकिकता दिव लोकोत्तरता की माता ।

: १४० :

हृत्तंत्री

भक्तुत हृत्तंत्री होती है ।

नाना स्वर-लहरी कर से बहु भाव बीज बपु में बोती है ।
 दान कर सुरुचि रुचिर सरसता सारा मानस-मल धोती है ।
 कर कमनीय क्रिया कितनी ही कामुकता अवगति खोती है ।
 सदाचार-तत्त्व-सेवन व्रत ले होती सरस सुधा सोती है ।
 रँग अनुराग-राग-रंगत में बनती दिव्य प्रगति गोती है ।
 कभी हृदय-द्रावक रव से भर रोमांचित बन वह रोती है ।
 कभी करुण-रस भाव से भरे भरती आँखों में मोती है ।

: १४१ :

जीवन-ज्योति

उठो भारत का तिमिर भगा दो ।

साधो भव के सिद्धि-मंत्र को सब को बना सगा दो ।
 निज सुख-दुख समान सब का दुख-सुख समझो न दगा दो ।
 त्यागो लाग लगन का पौधा निज उर मध्य लगा दो ।
 कर अनुभव अनुराग राग में मन-तन बसन रँगा दो ।
 जागो जीवन-हीन जनों में जीवन-ज्योति जगा दो ।

: १४२ :

स्वार्थ

कौन किसी का होता है ।

स्वार्थ-सिद्धि के सरस खेत में प्यार-बीज नर बोता है ।
सब छूटे वह हथकंडों से हाथ भला कब धोता है ।
पोत दूसरों को दे मोती अपने लिए पिरोता है ।
सग-से-भी सग को दुख देते तनिक नहीं मन रोता है ।
मोह अधेरी रुचि-रजनी में सुख की नौदों सोता है ।
जिससे पड़े स्वार्थ में बाधा जो वैभव को खोता है ।
वह प्रिय सुत भी आँख फोड़नेवाला बनता तोता है ।
सुख-सरबर के लिए नहीं बन पाता जो रस-सोता है ।
है ऐसा उर कौन कि जिसमें काँटे नहीं चुभोता है ।
हुई न परवा पर मन की निज मन की रोटी पोता है ।
निज सुख साध तरंगों में परसुख का पोत डुबोता है ।
स्वार्थ-भाव से ही उजड़ा दिव-भाव विहंगम खोता है ।
उसके ही करने मानवता-रुचिर चित्र को पोता है ।

: १४३ :

स्वार्थमय संसार

स्वार्थमय है सारा संसार ।

विविध कामनाओं के कर से प्रतिपालित है भव-व्यवहार ।
परम पवित्र अतीव प्रशंसित नरहित-रत है पर-उपकार ।
पर उसका आधार कान्त साधन है, कलिन कीर्त्ति-विस्तार ।

है वह स्वार्थ नितान्त कलंकित निन्दनीय पातक-आगार ।
जिसका है उद्देश्य प्रजा-पीड़न निर्दय बन नर-संहार ।
नर क्या पिपीलिका तक का भी किये बिना कोई उपकार ।
निज हित-साधन बहु संयत बन है जगती-जनजीवन-सार ।

: १४४ :

अभ्युदय

ऐसा हो अभ्युदय हमारा ।

जिसके बल से बहे धरा में सरस शांति-रसधारा ।
अपने जीवन के समान जन-जन जन-जीवन जाने ।
अपने सुख-दुख के समान सब सब का सुख-दुख माने ।
पाशव बल-विलीन हो जावे, छल छलियों का छूटे ।
कूटनीति-कर से न मालिका मानवता की दूटे ।
विविध विपत्ति-विधान-विधायक बन विज्ञान न जावे ।
वसुंधरा-तल पर विधि-विलसित धर्म-ध्वजा फहरावे ।

: १४५ :

मन का दास

कौन है मन का दास नहीं ?

कौन नहीं मनमानी करता, किसको उसकी प्यास नहीं ।
हो अपमान मान्यजन का पर इसे नहीं मन मानेगा ।
वह प्रपंच-नभ में बितान जी की बातों का तानेगा ।
सिद्धि-मंत्र कानों में अपनी-सी करने को फूँकेगा ।
लहू बहे तो बहे वह न लोहा लेने से चूकेगा ।

अपने सुख के लिए सुखी जन को वह दुःखमय करता है।
 अपना भार अपग सिर पर रख कर उसका जी भरता है।
 वह अपने आमोद के लिए बहु मदमत्त दिखाता है।
 बाधा पड़े दूसरों की ममता को धता बताता है।
 कहें कहाँ तक उन्हें कूतने वाले कूतें तो कूतें।
 मन-समान ही बहु विचित्र हैं मन की सारी करतूतें।

: १४६ :

मौजी मन

बड़ा मौजी है मानव-मन ।

रंग बंदलता ही रहता है तरल तरंगित तोयधि बन ।
 कभी फूल वह बरसाता है, है पवि-पात कभी करता ।
 कभी मुग्ध वह दिखलाता है, कभी मोद से है भरता ।
 है कुबेर का कान काटता कभी धराधिप बनता है ।
 कभी विहँसता है वह, आँसू कभी आँख से छनता है ।
 कभी रीझता कभी खीजता, पुलकित कभी जनाता है ।
 कभी गिराता है वह ओले, सुधा कभी बरसाता है ।
 कभी मधुर-से-मधुर कभी बहु कटु बातें वह कहता है ।
 कभी प्रेम-धारा-प्रवाह में बड़े वेग से बहता है ।
 कभी मृदुल नवनीत, कभी वह कुलिशोपम हो जाता है ।
 कभी बड़े ही मधुर गीत वह उमग-उमग कर गाता है ।
 है तारे तोड़ता गगन के दिवि को आँख दिखाता है ।
 कभी नाक-नायक को भी वह चिढ़-चिढ़ धता बताता है ।

कहें कहाँ तक मानव मन की रचना बड़ी निराली है ।
कभी बनाये उसके विष-प्याली बनती रस-थाली है ।

: १४७ :

चित-चोर

चोर नहीं चित-चोर कहाता ।

वह जीवन-सर्वस्व को चुराकर भी है कुछ नहीं चुराता ।
साधारण चोरी होने पर भी जो चित है दुखित दिखाता ।
वही देख कर मुख स्व-चोर का है अतीव पुलकित हो जाता ।
उसको लालायित विलोक वह है बहु लालायित बन पाता ।
अवलोके उत्फुल्ल उसे वह बनता है प्रफुल्लता-धाता ।
है यह भाव स्वभाव-विधायक या है भव-भावुकता-त्राता ?
अथवा किसी मधुर रस से है उसका महामनोहर नाता ?

: १४८ :

सरस समय

आयो समय सुंदर सरस ।

दिवस-निसि लहि मधुर रितु मधुरस रह्यो है बरस ।
करत पुलकित पिक कलित रव मलय-मारुत परस ।
चितविमोहित ललित लतिका कल कुसुम-कुल दरस ।
नवल दलमय हरित द्रुम लखि जात सुरतरु तरस ।
विपुल विलसति याहि रितु मैं अलि-अवलि प्रति बरस ।

: १४६ :

शिक्षा

है शिक्षा-प्रसार उपकारी ।

मनुज मात्र है शिक्षा पाने का सच्चा अधिकारी ।
अंध-विलोचन के निमित्त है अंजन मजु शलाका ।
मति-तमभरी निशा-उद्भासक मनोरंजिनी राका ।
ऊसर में भी वह है सुर-सरिता का स्रोत बहाती ।
पूँजीरहित जनों की बन जाती है वह प्रिय थाती ।
वह है पारसप्रकृति बनातो है लोहे को सोना ।
मिला उसी के पास लोक-मनमोहक अद्भुत टोना ।
होता है 'हरिऔध' जगत का बहु हित उसके द्वारा ।
वह है ज्ञानदायिनी, भ्रान्त पथिकजन का ध्रुव तारा ।

: १५० :

उलझी गाँठ

प्रेम-बंधन-गाँठें उलझीं ।

सुलभाये हैं और उलझतीं अन्य से नहीं सुलझीं ।
किसके कर में वे नख हैं जो प्रेम-ग्रंथि को खोलें ।
तम में ज्योति मिली कब उनको अंधे लाख टटोलें !
हरिण अधिक फंदे में फँस कब कभी निकल पाया !
कब वह बना अमायिक जिसको माया ने अपनाया !
हैं प्रेमिक-प्रेमिका प्रेम-मर्मों के सच्चे ज्ञाता ।
उलझी प्रेम-ग्रंथि को उनका कर ही है सुलभाता ।
विधु-कर से सजती हैं रवि-कर से टलती हैं रातें ।
यह भव है रहस्यमय इसकी भेद-भरी हैं बातें ।

: १५१ :

जो की गाँठ

न आवे ऐसी कभी घड़ी ।

काठ बना देती है जो को जो में गाँठ पड़ी ।
जिसका लघु दुख देखे भी लगती दृग-वारि-भड़ी ।
सुख पाता है उसे देख वह सहते आँच कड़ी ।
जिसको बहुत प्यार करता, थी जिसकी चाह बड़ी ।
उसकी ओर ताकते लगती है अवमान-छड़ी ।
जिसके सम्मुख रहती पलपल प्रीति-प्रतीति खड़ी ।
उसकी ही अवगति दिखलाती है विरक्ति जकड़ी ।
जो है गड़ी आँख में जो है ममता से भगड़ी ।
मान पा सकेगी कैसे वह मोती मंजु लड़ी ।

: १५२ :

अंधाधुंध

ऐसा अंधाधुंध न होता ।

यदि प्राकृतिक प्रपंच उपद्रव बीज नहीं बोता ।
बहुतों पर पवि-पात पविहृदय कभी नहीं करता ।
रक्तपात से पापाचार-परायण भी डरता ।
हिल-हिल धरा करोड़ों मनुजों को न निगल जाती ।
उदधि-तरंग विपुल नगरों को नहीं मग्न कर पाती ।
सुरपुर से पुर पलक मारते होते ध्वंस नहीं ।
लुटते वे न नगर जो थे अलका से कान्त कहीं ।

जो चेतन विभु होते तो उनकी सचेत विभुता ।
 होती विचलित बनी देख भवता को दनुज-सुता ।
 तब अनर्थ भव में नहीं होता वह रहता रक्षित ।
 पर है ऐसा कहाँ कहेंगे तो विभु है कल्पित ।
 पूरित विपुल विभूति प्रकृति है सर्वशक्तिशीला ।
 जगती जड़ता-जनित क्रिया है उसकी ही लीला ।

: १५३ :

मन का मामला

है मन का मामला निराला ।

अपने हाथों में रखता है वह अपना कुंजी-ताला ।
 है उसकी भावना भली कामना उसी की कमनीया ।
 है उसकी सुविधा सुविधा उसकी प्रवृत्ति है महनीया ।
 हैं उसके अनुकूल भाव जितने सर्वोत्तम हैं वे ही ।
 हैं जितने प्रतिकूल बनेंगे कभी वे न उसके स्नेही ।
 यही कहाती है मनमानी जिसकी अकथ कहानी है ।
 महाराज मन की यह महिमामयी महत्तम रानी है ।

: १५४ :

गौरव-गान

तब उमग-उमग क्यों न गावें ।
 जब सुन्दर समय पा जावें ।
 हिन्दी-विकास-नभ तल जिससे लसित हुआ ।
 जिसकी रुचिर सिता से तमसिन्धु सित हुआ ।

शिर कैसे न उसे नवावें ॥
 निजता-वसुंधरा में जिसने सुधा भरी ।
 जिसने सरस बनायी सूखी हुई सरी ।
 क्यों न उससे लगन लगावें ॥
 जिसकी कलित कला से हो लोकरंजिनी ।
 कविता अकान्त रजनी राका-निशा बनी ।
 हम कैसे उसे विसरावें ॥
 कवि-कुल-चकोर जिसको अवलोक जी सके ।
 जिसका मयूख जी भर चिरकाल पी सके ।
 क्यों न सरस उसे बतलावें ॥
 बुधजन अनेक अपने आवास में बसे ।
 तारक समान जिस के अवदात से लसे ।
 विधु कैसे उसे न बनावें ॥
 सब भारतेन्दु की अति कमनीय कीर्ति पर ।
 मानस-निवासिनी बहु महनीय मूर्ति पर ।
 क्यों न पुलक कुसुम बरसावें ॥

: १५५ :

भवितव्य

एक दिन हम भी मर जायेंगे ।
 उठ जायेंगे जग से जीवन के पूरे दिन कर पायेंगे ।
 गिरा दिव्यतम पग-बंदन कर तब न गौरवित कहलायेंगे ।
 न तो सतत भर-भर उमंग में हिन्दी-देवी-गुण गायेंगे ।
 तब हम नहीं विविध रचनाएँ प्रायः करते दिखलायेंगे ।
 स्वयं रीझ कर तब न रीझना औरों को भी सिखलायेंगे ।

तब न दीन-दुर्गति विलोक कर बारि दृगों से बरसायेंगे ।
 मुँह का कौर किसी का छिनता देख न समधिक घबरायेंगे ।
 देश-जाति का पतन प्रति दिवस पल-पल देख न अकुलायेंगे ।
 थाम कलेजा नहीं कलपते लोगों को तब अपनायेंगे ।
 जिसे न जतला पाया कोई उसको कैसे जतलायेंगे ।
 क्या हो जायेंगे तब कैसे इसे किसी को बतलायेंगे ?

: १५६ :

भव्य भारत

भव्य भारत है भव की मूर्ति ।
 होती है विभूति से उसकी भक्त-भावनाओं की पूर्ति ।
 विभुवर के समान ही उसके सिर पर है सुर-सरित-प्रवाह ।
 पातक-पंज-निपातन का भी उसको रहता है उत्साह ।
 सिंहवाहना की सी है उसकी भी सिंहवाहना शक्ति ।
 शिर पर शशि के धारण करने की भी उसकी है अनुरक्ति ।
 वह भी नागवंशधर है यदि हैं भुजंगभूषण सितकंठ ।
 सकल भूत का हित करने को वह भी रहता है उत्कंठ ।
 यदि हैं शंभु वृषभवाहन तो उसे शंभुता का है प्यार ।
 उसके विपुल अन्न - उत्पादन का है वृषभ-वंश आधार ।
 वे त्रिलोकपति हैं वे विभु हैं लोक-लोक के हैं आलोक ।
 समझ मर्म यह साध्य और साधक-जन का सिद्धान्त विलोक ।
 जिस दिन सिद्धिलाभ कर बन जायेंगे भव के भक्त अनन्य ।
 उसी दिवस भारतभूतलवासी वसुधा में होंगे धन्य ।

: १५७ :

निन्दित नरता

कहाँ है उस नर में नरता ?

काट किसी का पेट, उदर जो है अपना भरता ।
देख-देख पर का दुख जिसको सुख है मिल जाता ।
आँखों का आँसू जिस पर है मोती बरसाता ।
फूला-फला और को देखे जो है कुम्हलाता ।
पतन किसी का अबलोके जो पारस है पाता ।
जो आकुल विलोक औरों को खिलता रहता है ।
जिसे किसी को सता स्वर्गसुख मिलता रहता है ।
देख किसी को मुँह के बल गिरता जो हँसता है ।
कुत्सित कामों के निमित्त जो कटि को कसता है ।
लगे किसी की पीठ जो विपुल पुलकित होता है ।
बीज बदी का वसुधा में जो उमगे बोता है ।
चूस किसी का लहू किलकता जो दिखलाता है ।
मसल किसी का दिल जो फूला नहीं समाता है ।
भूली जिसे भलाई वह क्यों गरल नहीं पीता ?
भरी बुराई रग-रग में है तो क्यों है जीता ?

: १५८ :

साहसी

साहसी सूर कहाता है ।

सब असमंजस-तम को उसका तेज पुंज भगाता है ।
कितने रण-लोलुप विभावरीपति सम निज पति खोते हैं ।
उसे देख विघ्नादिक तारक सदृश तिरोहित होते हैं ।

कायरता-रजनी तुरंत ही अन्तर्हित हो जाती है।
 समर-भीति अवगति उलूक की आँख बनी दिखलाती है।
 कंटक-पूरित पथ को कंटक-रहित वही कर पाता है।
 सोये पड़े हुए जगती-जीवों को वही जगाता है।
 सिद्धि-लाभ के सारे साधन उसके कर में होते हैं।
 वही पोंछता है उनका आँसू जो सदा खो रोते हैं।
 सकल संकटों का वह साहससहित सामना करता है।
 न तो पवि-पतन से कँपता है न तो काल से डरता है।
 क्या अब नहीं धरातल में है उसकी बची-खुची साखें।
 अहह ! क्यों नहीं भारत-वासी की खुल पाती हैं आँखें ?

: १५६ :

सच्चा साहस

साहसी का सच्चा साहस ।

है सबलों का अति प्रिय संबल सूर सूरता का है सरबस।
 है वर विजय-विभूति-विकासक कीर्ति-सदन का कान्ततम कलस।
 कार्य-सिद्धि का अनुपम साधन अयसोपम पौरुष का पारस।
 वह है वह तेजस्वी दिवि रवि भय अगु जिसे नहीं सका ग्रस।
 जो है अप्रतिहत-गति होता वह है तपोपूत वह तापस।
 नस-नस में जो रस भरता है वह है वह पवित्रतम पावस।
 वह है इतना तत्पर होता जिसे नहीं छू सकता आलस।
 है तोड़ता गगन के तारे पवि से भी भिड़ पाता है जस।
 नाना रत्न-लाभ करता है वह अगाध अम्बुधितल में धँस।

उसके बाँधे बँधा तोयनिधि धरा पर गई सुधा भी बरस ।
 पाई विजय अजेय दुर्ग पर दो ही दिव्य जनों ने कटि कस ।
 है वह मंत्र, शक्ति पाता है जिससे अभिमंत्रित हो मानस ।
 जिससे है सजीव जन बनता साहस है वह संजीवन-रस ।

: १६० :

फटकार

जान हथेली पर ले लेगा ।

क्या नाकों में दम होते भी तू पापड़ बेलेगा ?
 भेल नहीं सकता जिसको क्या वह दुख तू भेलेगा ?
 ऊँची उठती लहरों में क्या तू नौका खे लेगा ?
 जो तुझ से होगा न क्या उसे औरों पर ठेलेगा ?
 तेरा मुँह है नहीं कि कायर तू सिर से खेलेगा ?

: १६१ :

भव-पथ

बड़ा दुर्गम भव-पथ है पथिक !

पाँव सँभल कर रखना, रहना सावधान समधिक !
 जन बन काक करेंगे काँ-काँ कूकेंगे बन पिक !
 सब की सुनना किन्तु किसी के हाथ न जाना बिक !
 ओछे बन न उछलना छलियों से मत जाना छिक !
 वहीं जमाना पाँव जहाँ पर वह सकता हो टिक !

रहें सर्वदेशी विचार बन सकें नहीं प्रान्तिक ।
 वैध कर्म करना अवैध बातों के कहा अधिक ।
 मानवता ममतामय होवें बातें व्यवहारिक ।
 चाल चलें वह जिससे जनता कह न सके धिक्-धिक् ।

: १६२ :

भयावह पथ

भयावह तेरा पथ है पथिक ।

बन परम संयत साहस-मूर्ति, स्वव्रत का रखना ध्यान अधिक ।
 मानना बाधाओं को शकुन, कंटकों को कमनीय कुसुम ।
 भयंकर जीव-जन्तु को स्वजन, उरग को रज्जु समझना तुम ।
 बहु विकट कानन को सब काल, जानना मंजुलतम उपवन ।
 विहँसते हँसते सहना सदा, भाड़-भंखाड़ों की उलझन ।
 न होना भूतादिक से भीत, क्योंकि वे हैं शिव के सहचर ।
 सहमना नहीं बिलोके सिंह, सिंहबाहना को सुमिरकर ।
 गर्त को न तो मानना गर्त, न औघट घाटों से डरना ।
 बिलोके सरिताएँ सावर्त्त, उन्हें भी निरावर्त्त करना ।
 तरंगायित तोयधि अवलोक, तुरत कटि कस तरंग में आ ।
 बनाना अवनी को अति चकित, अलौकिक कुंभजता दिखला ।
 बलाओं को मुँह बाये देख, उन्हें देना तत्काल कुचल ।
 मिटाना चालें चल-चल उसे, विघ्न बन यदि हो खड़ा अचल ।
 लोकहित देश-जाति-हित निरत, मनुज-जीवन ही है जीवन ।
 धन्य है वह जन जिसका लगा, किमी सत्पथ में तन-मन-धन ।
 भले ही हो उसका इतिहास, रक्तरंजित बहु त्याग-बलित ।
 पर उसी की जयध्वनि से सतत, दृष्टा करती है धरा ध्वनित ।

: १६१ :

प्रेम-पीड़ा

प्रेम-पीड़ा है परम मधुर ।

तपता उर उससे पाता है स्रवित अश्रु-सा सलिल प्रंचुर ।
जो आनन अवलोक नयन के रहते सतत नितान्त सुखित ।
जिसकी छवि की सुधा पान कर बनते वे पुलकित ललकित ।
क्यों वियोग-वासर में उनकी छिनती नहीं अतुल सम्पति ?
जो धीरज न बँधाती रहती पुनर्मिलन की प्रिय अवगति ।
तारे गिनते रात बीतती नींद न आती लगे लगन ।
स्मृति-बल से होता न स्वप्न में जो प्रियतम का मंजु मिलन ।
दुख-वासर ही सुख-वासर वैभव का है सच्चा सूचक ।
विरह-कसौटी पर कस जाता है प्रियतम का प्रेम-कनक ।

: १६४ :

निर्भिक भ्रमर

भ्रमर नहीं कंटक से डरता ।

छिद-विध जाय भले ही पर वह व्रत का है प्रतिपालन करता ।
धूप कड़ी हो लू चलती हो कब उसने छोड़ी तत्परता ?
कार्यसिद्धि के लिए कब नहीं पाया गया भाँवरे भरता ?
कर्मवीर नर उतर कर्म-पथ में बाधाओं को है हरता ।
पवि का प्रबल प्रहार हुण भी पाँव नहीं पीछे है धरता ।
निज व्रत-रत रह तुच्छ कीटकों का भी है संसार सँवरता ।
है नर को देवता बनाती कर्मनिरत कमनीया नरता ।

: १६५ :

परवशता

परवशता से भव है डरता ।

स्वतंत्रता है किसे न प्यारी कौन नहीं उसका दम भरता ।
मानव क्या पशु-पक्षी तक परतंत्र बने हैं बहु दुख पाते ।
टूट गये बंधन कीटादिक भी हैं फूले नहीं समाते ।
पर वह स्वतंत्रता जो पामरता की है प्रतिमूर्ति कहाती ।
जो अनाथ बलहीन दीन-जन का है प्रायः गला दबाती ।
जो उत्पात मचाती रहती है बन-वन प्रपंच की जननी ।
रह अपकार निरत कहलाई जो अविचार बीज की अवनी ।
जिसने शान्ति का गला रेता वसुधा-तल पर रुधिर बहाया ।
जिसने कोमल भावों को कुत्सित भावों का निलय बनाया ।
उस स्वतंत्रता को कोई कैसे स्वतंत्रता कह सकता है ।
दानवता प्रचार में जिसका कौशल कभी नहीं थकता है ।
पड़-पड़ कर प्रपंच में जिससे पशुता बन जाती नरता है ।
मानवता खोकर क्यों कोई उस स्वतंत्रता पर मरता है ।

: १६६ :

स्वतंत्रता की धारा

स्वतंत्रता की सरसा धारा ।

जन-जीवन के सुख-समूह का है कमनीय सहारा ।
तो उसका वह ज्योति-पुंज है यदि जीवन है तारा ।
यदि है जीवन-अयसोपम तो वह है पारस न्यारा ।

रुज-पीड़ित जीवन-निमित्त है वह संशोधित पारा ।
 उससे मीठा बनता रहता है जीवन-जल खारा ।
 यदि जीवन सुपुरुष है तो वह है अति दिव्या दारा ।
 उसका हित होता रहता है सब दिन उसके द्वारा ।
 परतंत्रता कुधारा पतितों का है कान्त किनारा ।
 सहज सुगम स्वच्छन्द शान्ति-पथ ही है उसको प्यारा ।
 उसकी गति है मंहती उसका है अति कलित करारा ।
 सुधा-सिक्त उसके रस से है जन का जीवन सारा ।

: १६७ :

आँखों का न खुलना

आँख खोले भी खुली नहीं ।

लगी कालिमा अहह आज तक धोखे में पड़ धुली नहीं ।
 जिससे छली न छल कर पाते मिल पाई वह गली नहीं ।
 जिसे चाहिये था खिल जाना खिल पाई वह कली नहीं ।
 चाल न चल पाते खल जिससे चाल गई वह चली नहीं ।
 बार-बार दिल दुखा-दुखा लालसा गई कब दली नहीं ।
 कैसे भला भला होता भावना बनी जब भली नहीं ।
 क्यों हित हो माता जब ममता ढंगों में है ढली नहीं ।
 क्यों मति मंहती बनती जब अवगति पलने में पली नहीं ।
 जै सीधी चाहिए आह कृति वैसी फूली-फली नहीं ।

: १६८ :

न जागनेवाली जाति

जगाने पर भी नहीं जगी ।

जाति पड़ी सोती है अब भी उसे न लगन लगी ।
कब वह कहाँ जगी इतनी जो निद्रा नहीं भगी ।
क्या उसकी कुत्सित करनी द्वारा है हुई ठगी ।
क्या वह कुव्यसन पागों में है रहती अधिक पगी ।
क्या सच्ची जागृति बन पाई उसकी नहीं सगी ।
हठ तृण जिससे जले क्यों न वह लाग आग सुलगी ।
अहह किसलिए चित्त-महत्ता पड़ती है मँहगी ।
देश-प्रेम रंगत में अब तक क्यों वह नहीं रँगी ।
भयतम जिससे टले क्यों न उर में वह ज्योति जगी ।

: १६९ :

हृदय-हीनता

हाय हमारी हृदय-हीनता !

परउपकार पुनीत सलिल की जन को मिल पाई न मीनता ।
कब चित द्रवित हो सका देखे दीन जनों की दुखद दीनता ।
दूर कर सके कब हम पीड़ित पराधीन की पराधीनता ।
मानवता का मान नहीं करती है मनमानी कुलीनता ।
देख विपत्ति पतित को दिखलाई न सदयता समीचीनता ।
कितनों की स्वच्छन्द वृत्तियों को है मन छल-छन्द छीनता ।
प्राचीनों को विचलित करती है कुविचारों की नवीनता ।

बहुतों को है व्यथित बनाती उचित उक्ति की उदासीनता ।
 लोकहितों को भूल गई है लालायित लालसा-लीनता ।
 परम निरंकुशता अहमिति की मोहमयी मति की मलीनता ।
 प्रतपित होती नहीं आज भी पतित प्रकृति की पापपीनता ।

: १७० :

आँख होते अन्धा

आँख होते जो अन्धा बने ।

कैसे वह फल-फूल सकेगा जो जड़ अपनी आप खने ।
 जो कंधा पकड़े औरों का आँखों को कर बंद चले ।
 टल-टल कर भी उस प्राणी के सिर की कैसे बला टले ।
 जिसे सूझ कर सूझ न पाया जो दिन को भी रात कहे ।
 क्यों न अँधेरा उसकी आँखों के सामने सदैव रहे ।
 जहाँ चला कुछ करने ठोकर खा मुँह के बल गिरा वहीं ।
 बहुत खोलने पर भी जिसकी अवगति आँखें खुली नहीं ।

: १७१ :

भव की लीला

विटप है भू पर पड़ा दिखाता ।

काल-कुठार प्रहार हो गये छूटा जग का नाता ।
 लता लपट जिसके तन में थी फूली नहीं समाती ।
 कभी लहलहाती खिल-खिल कर कभी फूल बरसाती ।
 गूँज-गूँज कर के भोंरे थे जिसका गौरव गाते ।
 मधुर बोल कर जिसे विनोदित थे बहु बिहग बनाते ।

रंग-विरंगी विविध तितिलियाँ जिसको नृत्य दिखातीं ।
 लसे फूल से जिसे डालियाँ बारम्बार सजातीं ।
 हरे-भरे दल जिसके सब को हरा-भरा कर देते ।
 प्रातःकाल मिले रवि-कर जो मोती रहे पिरोते ।
 जिसके कलित अंक में था खग-कुल का पालन होता ।
 कभी बोलता था कोकिल तो कभी बोलता तोता ।
 तपे पथिक ठंडे हो जिसकी छाया में सुख पाते ।
 जिसके मीठे-मीठे फल को लोग मुदित हो खाते ।
 आज वही तरु कटे रहित सब प्यारे दृश्यों से है ।
 बने काल का कवल पूछता भू में कौन किसे है ।
 मरण-करोँ से मुक्ति-लाभ का किसको मिला वसीला ।
 अहह कहें क्या जीवन तक है भव की सारी लीला !

: १७२ :

कुठार प्रहार

बिटप पर है कुठार चलता ।

ऐसा करना कहाँ किसी मानव को है खलता ।
 हरा-भरा रह जो जन-जन का रंजन करता है ।
 रस-प्रदान के लिए जो रुचिर रस से भरता है ।
 ढेले खा-खा कर भी जो मीठे फल देता है ।
 कभी किसी से जो न मोल उस फल का लेता है ।
 जिसके दल हिल-हिल हैं नाना दृश्य दिखा जाते ।
 खिल-खिल जिसके कुसुम विलोचन में हैं बस पाते ।
 पथिक बैठ जिसकी छाया में पथ-श्रम हैं हरते ।
 जिसके नीचे पहुँच हैं न तपनातप से डरते ।

जिसके मूल-फूल-फल-दल हैं रोगों के बाधक ।
जो है नाना जीव-जन्तु खग-मृग का अवराधक ।
जिसका ऊँचा शीश लोकहित का है वर बोधक ।
जो है वसुधा-वायु के विकारों का संशोधक ।
जिसका सूखा तन है विविध उपस्कर-अवलंबन ।
जो बनता रहता है गृहसृजनादिक का साधन ।
रहते हरित काटना उसका और अधम बनना ।
क्या है उचित और क्या है ऐसा करना न मना ।
किन्तु प्रयोजन की धारा में कब जनता न बही ।
अहह स्वार्थपरता सम्मुख कब मानवता निबही !

: १७३ :

मनोवेदना

आज वह डाँट बताता है ।
जिसे रखा आँखों पर अब वह आँख दिखाता है ।
जिसका मुँह अवलोकन करके फूले नहीं समाते ।
जिसे देख छाती दूनी होती उमंग में आते ।
फेर-फेर कर मुँह अब वह है मुझको बहुत सताता ।
सुना-सुना कर जली-कटी वह तोड़ रहा है नाता ।
जिसकी नह-उँगली का दुखना मुझसे सहा न जाता ।
वही आँख में मेरी उँगली करते नहीं लजाता ।
जिसे गोद में ले-ले कर मैं रहा स्वर्ग-सुख पाता ।
छेद-छेद छाती को क्यों है छलनी वही बनाता ।
रहा भरोसा जिसका समझा जिसे गोंठ की पूँजी ।
उसकी कड़वी बातों की ध्वनि क्यों कानों में गूँजी ।

कहें तो कहें क्या क्यों इतना मुझे गया कलपाया ।
फूट गया है भाग या समय ने है पलटा खाया ।

: १७४ :

बात की करामात

सब बातें हैं मधुर न होतीं ।
सभी सुधा हैं नहीं बरसती प्रीति-बीज हैं सभी न बोती ।
कितनी हैं बेधती कलेजे, कितनी बातें हैं कलपाती ।
कितनी हैं उत्पात-सहचरी, कितनी ही हैं आग लगाती ।
कोई बात कड़ी-कड़वी होकर भी है हित करती रहती ।
कितनी बातें सरसा होकर भी हैं आँचें सहती रहती ।
मिलीं बहुत-सी बातें ऐसी जो तम में है ज्योति जगाती ।
कितनी हैं ऐसी जो उलझी गुथी को भी हैं सुलभाती ।
पाप-ताप वैराग्य-मुक्ति आदिक की बातें भी बातें हैं ।
उनसे मलिन दिवस होते हैं उज्ज्वलतम होती रातें हैं ।
गले उतरते रहते हैं हैं मुकुट बंधा ही करते सिर पर ।
बनते उनसे नरक स्वर्ग हैं नंदनवन सम नाना ऊसर ।
वे अदिव्य को दिव्य, दिव्य को परम अदिव्य बना पाती हैं ।
विविध भावनिरता बातें वसुधा में बड़ी करामाती हैं ।

: १७५ :

विजया

विजये आती हो तो आओ ।
शरद विंकच वर वारिज जैसा अपना विकसित बदन दिखाओ ।

जन-जन के उर में उमंग भर उसे तरंगित उदधि बनाओ ।
 आलस-तिमिर-भरित मानस में तत्परता-दिवि-ज्योति जगाओ ।
 उन्नति-पवन प्रगति-प्रवाह से अवनति-घनता-भीति भगाओ ।
 अनुत्साह गुरु गिरिवरगण पर कार्यदक्षता-वज्र गिराओ ।
 बैर-विरोध-कंटकित पथ में सद्भावों के सुमन बिछाओ ।
 दंभ-द्रोह-मरु-वसुंधरा में संयत मति का सोत बहाओ ।
 नगर-ग्राम-पुर-तरुवरचय में सहज स्नेह के कुसुम खिलाओ ।
 जाति-मात्र में जीवन भर दो विजयिनि जागृति-शंख बजाओ ।

: १७६ :

पूत-पंचक

१

जो जन कर पाते नहीं, कलुषित कार्य-कलाप ।
 तो न कभी होते विदित, अविदित मानस-पाप ॥

२

शूकर जैसे जीव को, है मल से ही काम ।
 नन्दनवन-सा ही न हो, क्यों उपवन अभिराम ॥

३

वह पकड़े कैसे सुपथ, तोड़ जीविका-जाल ।
 आजीवन जकड़े रहे, जिसे जगत् - जंजाल ॥

४

उसे ज्ञात होती नहीं, बांछनीय वर वृत्ति ।
 गरीयसी बनती नहीं, पापीयसी प्रवृत्ति ॥

५

भटक रहा है जीव जब, छीलर छवि पर भूल ।
कैसे भाता तब उसे, सुर-सरिता का कूल ॥

: १७७ :

वर-वधू

१

समझ सका जो प्रेमपथ पथिकों का अधिकार ।
वह पति पति है है जिसे पत्नी सच्चा प्यार ।

२

बहे बिबाहित हृदय में पावन प्रेम-प्रवाह ।
चित में संचित नित रहे हित उपचित उत्साह ।

३

बनिता-सुख पर दृग रहे कभी उसे दुख दे न ।
कर वैदिक विधि से वरण वर वरता भूले न ।

४

ललना-लोचन में बसे कर उर पर अधिकार ।
पले प्यार की गोद में बने गले का हार ।

५

सदा विपुल पुलकित रहे कर अरुचिर रुचि अन्त ।
कभी अकान्त बने नहीं कान्त कहा कर कन्त ।

६

क्यों न बनायेगी उसे वह स्वकंठ का हार ।
जिस पत्नी को है अधिक पातिव्रत से प्यार ।

७

देवी उसको मानते हैं महि के मतिमान ।
जो प्रियतम को समझती है देवता समान ।

८

हैं वह शुचि रुचि सहचरी है वह परम उदार ।
जी से प्यारा है जिसे प्रिय पति का परिवार ।

९

सुप्रकृति सुवचन सुमतिरति सुकृति सुगति सुविचार ।
हैं कामिनी कुलीन के जीवन के आधार ।

१०

जीवनधन पर जो सती सकी स्वजीवन वार ।
है असार संसार में उसका जीवन सार ।

: १७८ :

सवैया

१

अवलोक गिरा मुखचंद है मोहक, चाँदनी मानस में खिलती ।
वर भाव समीर बहे उर में उपजें कल वेलि सी हैं हिलती ।
वह पाती सजीवता है उतनी कविता जितनी ही कि है छिलती ।
कवि भाग्य है पाते सुधा यदि हैं वसुधा में सुधा है किसे मिलती ।

२

मुह जोहत जो दिन-रैन रहै रवि लौं प्रिय वा नालिनी के रहौ ।
अपने हिय में मत राखहु मोहि पै प्यारे बने मम ही के रहौ ।
पति नापरतीति की बात कहा तुम मोहक काहु के जी के रहौ ।
पति दूरे रहौ या नगीचे रहौ तुम नीके रहौ उनहीके रहौ ।

: १७६ :

कवित्त

१

भरी हुती राज मैं प्रजानुरंजिनी प्रतीति ही
न भीति जननी सिपाही लाल पगरी ।
हुती राजकोष पै अतीव कमला की कृपा
वा मैं रही भरित धरा विभूति सगरी ।
गुन गाइ-गाइ कै गुनी जन हे गौरवित
चारु चाँदनी सी कल कीर्त्ति हुती बगरी ,
आपने समै में भोजराज भोजराज से हे
धारा नगरी ही दीख परी धारा नगरी ।

२

भले भले भाव भरती है भूमियों में सदा ,
उस में विभूति अनुभूति भूरिता की है ।
वीरता-उपेत दिवि दिव्यता विकास लसी ,
उसकी मनोज्ञता निकेत मंजु भाँकी है ।
'हरिऔध' कर अपसारित अतुलतम
विभुता विराजमान उस में विभा की है ।
कीर्त्ति की कलित वैजयन्ती है उड़ाती वही
जाति की ही विजय विजय विजया की है ।

: १८० :

कामना

नंदन-विपिन सम कुसुमित भाव होवे ,
भावुकता-सौरभ में भावना सनी रहे !

कामद परम उक्ति होवे कामधेनु जैसी ,
चिन्ता मध्य चिन्तामणि चारुता घनी रहे ।
लोकहित पावन ललक लसे मानस में ,
सुधा-सी सरसता से सुरुचि घनी रहे ।
कल्प-कल्प फलद अकल्पित विधान से हो ,
कल्पना हमारी कल्प-लतिका बनी रहे ।

: १८१ :

हास-विलास

१

किस लोक मंजु की महान् मंजुता से रीझ ,
महँक रही है वायु महँक अधिक ले ?
किस मधुसिन्धु को सुनाता है मधुर गान ,
अति कमनीय तान मधुप रसिक ले ?
‘हरिऔध’ कूक-कूक किसे है बनाता मुग्ध ,
रुचिर रसाल मंजरी का रस पिक ले ?
पुष्पवृन्द विकच बने हैं किसे अवलोक ,
किसको विलोक कुन्द के हैं दाँत निकले ?

२

तम-तोम काँप उठा महि मुसकाने लगी ,
उर में समीर के निवास किया रस ने ।
विकसे प्रसून बिटपावलि विकच बनी ,
लता-बेलि-तन में विलास लगा लसने ।
‘हरिऔध’ उमगी दिगंगना बिहँस उठी ,
गगन में विपुल विनोद लगा बसने ।

भागी जाती यामिनी के पोछे पड़े तारे देख ,
खिल गई चाँदनी मयंक लगा हँसने ।

: १८२ :

मालवीय-महिमा

१

मधुर वचन में सुधा सी माधुरी है भरी ,
वसुधा-विमोहिनी मनोहरता जी की है ।
कलित कलेवर की अति कमनीय कीर्ति ,
चन्द्रमा की चारु भूत चाँदनी सी नीकी है ।
'हरिऔध' मन मंजु भावना-निकेतन है ,
भरी पूत भाव में विभूति अवनी की है ।
दिव्य ज्योति बलित वदन है विलोकनीय ,
लोकपूजनीय मूर्ति मालवीयजी की है ।

२

पूत वेदपथ सित भानु की अनूठी सिता ,
सुरसरिधारा धर्मभाव अवनी की है ।
जीवनविहीन भारतीय जन-जीवनी है ,
रक्तधारा हिन्दू-जाति सूखी धमनी की है ।
'हरिऔध' सच्ची लोक-शान्ति की सहोदरा है ,
विकच सरोजिनी सुनीति सरसी की है ।
भव-अभिनन्दनीय कोई है महाविभूति ,
बहुवन्दनीय मूर्ति मालवीय जी की है ।

३

बार-बार तेरे खोलने से जाति-आँखें खुलीं ,
मेरा घर बार-बार अब कैसे लूटेगा ?

पाकर अटूट बल तेरा टूट होगी नहीं ,
 पड़-पड़ फूट में न भाग अब फूटेगा ।
 'हरिऔध' कहै ए रे ब्रह्मवंश-अवतंस ,
 तेरे तेज-अंश से अपार तम टूटेगा ।
 तू है छूतछातहीन तेरी पूत छाया पड़े ,
 छिति के अछूत का अछूतपन छूटेगा ।

४

अन्धा कैसे मंजुल मुकुर को सकेगा देख ,
 कैसे दीवापति को उलूक अवलोकेंगा ?
 छोटे-छोटे बाँध बाँध-बाँध बुद्धिहीन नर ,
 सुरसरि पावन प्रवाह कैसे रोकेगा ?
 'हरिऔध' जो है लोक-लोचन, परम खल
 उसके विलोचनों में धूल कैसे भोंकेगा ?
 बाल-बाल उसका बिनेगा जो विवेक-हीन
 बंद बन बंदनीय जन को विलोकेंगा ।

५

परम मलिन के तिमिर भरे मानस में ,
 मंजुल तमारि की किरण बन सोहेगी ।
 पावन बनाकर अपावन अवनि-जन को ,
 जगती के जीव को सजीव बन जोहेगी ।
 'हरिऔध' उचित विचार बर 'सूत्र ही में ,
 परम उदार भाव मंजु मणि पोहेगी ।
 महामंत्र दे कर करेगी महामोह दूर ,
 किसे भला मोहन की मोहनी न मोहेगी ?

स्फुट कवित्त

१

खाल खिंच जाय काल-गाल में समाय जाँय ,
करें लाल आँख क्यों खवैया अहैं खीर के ।
बाल-बाल बिने लाल ललना विलोप होय ,
लरें ताल ठोंकि क्यों पुजैया अहैं पीर के ।
'हरिऔध' हिन्दू भला कैसे करवाल गहैं ,
लोहू है न गात में विलोकि लीजै चीर के ।
हैं न कुल काल हैं न जातिकंठ मंजु माल ,
माई के न लाल हैं न बाल काहू बीर के ।

२

बाधा परे वारिधि को बार-बार बाँधि दैहै ,
गिरि को गिरैहैं कीर्ति कैहैं पवि चीर के ।
मसक-समान मीसि दैहैं महा पापिन को ,
काल ह्वैहैं कालिमा कलंकित शरीर के ।
'हरिऔध' हिन्दू संगठित ह्वै न कैहैं कहा ,
धरमधुरीन हैं धरैया अहैं धीर के ।
लोक-परिपालक हैं अरिदल-घालक हैं ,
कुल-प्रतिपालक हैं बालक हैं बीर के ।

३

बैन में मधुरता मनोहरता भावन मैं ,
चावन में चोज हूँ प्रचुर दरसत है ।
जानत न रीति अनरोति औ अनीति की है ,
पूत परतीति रोम-रोम परसत है ।

‘हरिऔध’ पति-प्रीति पाग-पगी अँगना के ,
 भाग-भरे भाल पै सुहाग बरसत है ।
 देह में सदेह विलसति सुकुमारता है
 नेह-भरे उर में सनेह सरसत है ।

४

बरसि-बरसि रस विलसित कुंजन में
 प्रमुदित बार-बार करि-करि नंद-नंद ।
 बरबस मोहत है बानक दिखाइ मंजु
 क्यों हूँ वीर सकत न राखि आँखि बंद-बंद ।
 ‘हरिऔध’ फिरि-फिरि देत मन मेरो फेरि
 फर पंदी गरे डारि बहु फरफंद-फंद ।
 मंद-मंद आवत हँसत जात मंद-मंद
 मंद-मंद गावत बजाइ बंनु मंद-मंद ।

५

कंत जो न आयो तो वसंत कत आयो आली ,
 पावक लगावति पलासन की पाँति है ।
 कलकंठ कूक बहु विकल बनावति है ,
 बौरे-बौरे आमन विलोकि बिलखाति है ।
 ‘हरिऔध’ बैहर ते बिहरि करे जो जात ,
 अवलोकि कुसुम-अवलि अकुलाति है ।
 पीरे-पीरे पातन ते पीरी परी जाति बाल ,
 सीरे उपचारन ते सीरी परी जाति है ।

६

छवि अवलोके मैलो लगत छपाकर है ,
 लोल-लोल लोचन विलोके ललचाति है ।

मधुमयी मंजु मुसुकान चित चोरति है ,
मोहनी पै मोहि-मोहि मोहित दिखाति है ।
‘ हरिऔध ’ कमनीय काम सम तन हेरि ,
कामिनी की सारी मनोकामना हेराति है ।
रिसभरी रसभरे सैनन ते सरसाति ,
सीरे-सीरे बैनन ते सीरी परि जाति है ।

७

तालियाँ बजायेंगे कुलीनन के पीछे कौलों ,
कुल-ललना को वौलों गालियाँ सुनायेंगे ।
बुरे स्वाँग रचि कौलों उर में हनेंगे साँग ,
राग-रंग मिस कौलों रंगत गवायेंगे ।
‘ हरिऔध ’ लालिमा हरेंगे कौलों आनन की ,
कौलों कलावानन को कालिमा लगायेंगे ।
गायेंगे कबीर कौलों गरौ दाबि गौरव को
कौलों मंजु मुख काँहि रौरव बनायेंगे ।

८

परम सरल प्रेम-पथ कौ पथिक बनि ,
गरल सरस रस माँहि कबों छोरो जनि ।
सकल अपावन कौ पावन करत मन ,
मानव को नातो काहूँ मानवते तोरो जनि ।
‘ हरिऔध ’ बनो बतियान कौ बिगारो नाँहि ,
जाति-हित बेरो बैर बारिधि में बोरो जनि ।
आँखि के अछूत छतियान मैं करौ ना छत
छूत-छात मैं परि अछूतन को छोरो जनि ।

: १८४ :

मौन मन की पुकार

१

कहीं कर पाती है विपुल जन-उपकार ,
कहीं लोक-लाल की ललित किलकार है ।
डालती गले में कहीं कुसुम कलित हार ,
कहीं लोचवारे की लचीली ललकार है ।
'हरिऔध' कहीं पर बहती रुधिर धार ,
कहीं वह बनती मृदुल भनकार है ।
मूक दृग-जलधार में है कौन-सी गोहार ,
कौन-सी न जाने मौन मन में पुकार है ।

२

चिर दिन सोया भाग कैसे भला जाग जाता ,
कैसे माना जाता मानसों में लगातार है ।
कैसे गूँज जाती बार-बार वासना की बीन ,
कैसे कहा जाता प्रेम मंजु भनकार है ।
'हरिऔध' कैसे ज्ञात होता खुला बन्द द्वार ,
जाना जाता कैसे हाथ आया रत्न-हार है ।
आता भला कैसे तो मनाने मेरे पास कोई ,
एरे मन जो न तेरे मौन में पुकार है ।

: १८५ :

भारत की भारती

सारी वसुधा में है दगारति विमल मनि ,
पाहन हूँ माँहि अहै प्रतिभा पसारती ।

वारिधर-सरिस विवेक-वारि बरसाति ,
 भूतल में स्वर्ग की विभूति है उतारती ,
 'हरिऔध' भावना सुधारति है भावुक की ,
 मानस में पूत भूत भाव है उभारती ।
 भरत-कुमारन की भारती की मूलभूत
 भारतीयता ते भरी भारत की भारती ।

: १८६ :

कवि-कीर्ति

१

कोई काल कैसे नाम उनका करेगा लोप ,
 जिनको प्रसिद्ध कर पाती है परंपरा ।
 जिनकी रसाल रचनाओं से सरस बन ,
 रहता है सदैव याद पादप हरा-भरा ।
 'हरिऔध' होते हैं अमर कविता से कवि ,
 कमनीय कीर्ति है अमरता-सहोदरा ।
 सुधा हैं बहाते कवि-कुल वसुधा-तल मे
 सुधा कवि-कुल को पिताती है वसुन्धरा ।

२

चिरजीवी कैसे वे रसिक जन होंगे नहीं ,
 नाना रस ले-ले जो रसायन बनाते हैं ।
 लोग क्यों सकेंगे उन्हें भूल जो लगन साथ ,
 कीर्ति-बेलि उर आलवाल में लगाते हैं ।
 'हरिऔध' कैसे वे न जीवित रहेंगे सदा ,
 जग में सजीव कविता जो छोड़ जाते हैं ।

कैसे वे मरेंगे जो अमर रचनाएँ कर
मर मेदिनी में ही अमर पद पाते हैं।

: १८७ :

अछूत

१

बाल-बाल बिके है बेहाल रहते हैं सदा ,
इनके बवाल आज भी गये न कूते हैं।
तो भी काठ का सा है कलेजा हिन्दुओं का बना ,
प्यार के न आँसू बंद लोचनों से चूते हैं।
'हरिऔध' छलछंद छोड़ो लो बदल आँखें ,
छीजी जाती जाति के ए सच्चे बल-बूते हैं।
छाती से लगा लो कौन छूत इनमें है लगी ,
छूते क्यों नहीं हो ये अछूत तो अछूते हैं।

२

अंग हैं और हैं एक ही जाति के हैं उनमें क्या मिली न भलाई।
ए 'हरिऔध' सगे हैं सदैव के है कमनीय अनेक कमाई।
है उनकी भगिनी सुरआपगा पावनता जिसने बहु पाई।
हैं प्रभु के पदकंज प्रसूत वे, कैसे अछूत में छूत सम'ई।

३

खाइये न मुँह की, बखेरिये न बैर काँटे ,
कर लाल आँख लहू सगों का न गारिये।
लाग से लगाइये न आप घर ही में आग ,
ऊब आप ही न पत अपनी उतारिये।

‘हरिऔध’ सोचिये, बिगारिये न बातें बनौ ,
जोम से न हित की जमी जर उखारिये ।
आँख होते करिये न छाती के छतों में छेद ,
छूतछात से बच अछूत को उबारिये ।

: १८८ :

मार्मिक उक्तियाँ

१

भाग जागते हैं कर्मरत कीर्ति-भाजनों के ,
भव में अभागे आलसी हैं भीख माँगते ।
खोल-खोल थके पर आँख खुलती है नहीं ,
सर्वदा सजग रहने से वे हैं भागते ।
भोर पर भोर हो रहे हैं तो भले ही होवें ,
युवक हमारे निंद्य नींद नहीं त्यागते ।
युग बीत गये जाति खड़ी मुँह जोहती है ,
कब के जगे हैं जो जगाये नहीं जागते ।

२

बार-बार होता है विनोदित अतीव वह ,
स्नेह-सिक्त वारि विलोचनों से बरसे ।
नस-नस में है वह पाती पूत रस-धारा ,
मानस समान मंजु मानस के सर से ।
‘हरिऔध’ मिलती उसे है दिव्य अनुभूति ,
भवभूति मयी भक्ति-भावना के कर से ।
पातकी अयस कान्त कंचन है बन पाता ,
प्रभु पूत पद प्रेम पारस के परसे ।

फँकते हैं भव-चौसर में अति चाव से पूत प्रतीति के पासे,
 हैं करते उपकार उन्हें हैं पसंद नहीं अपकारक भाँसे।
 हैं शुचि भाव के सच्चे उपासक हैं फँसते न प्रपंच में फाँसे।
 हैं करते सुधा-पान सदा वसुधातल में प्रभु-प्रेम के प्यासे।

: १८६ :

हिमाचल-हिन्दी-भवन

देशप्रेम का सदा पूततम पाठ पढ़ावे।
 जन-जन जी में दिव्य जातिहित-ज्योति जगावे।
 समयप्रगति का भेद बता भय-भूत भगावे।
 असफल को सविधान सफलता-मंत्र सिखावे।
 नीरस मानस के लिए बन मधुमास सरस पवन।
 भले भाव उर में भरे हिमगिरि का हिन्दी-भवन।

: १६० :

शुभ कामना

आ कर नभ में मेघ समय पर जल दे जावें।
 बर बूँदें बहु सरस सरस मोती बरसावें।
 सोना उगले धरा खेत सब हरित दिखावें।
 मंद पवन मिल गये मंजुता से लहरावें।
 उनकी प्यारी कामना सफल रहे होती सदा।
 फूलें-फलों किसान सब पा मनमानी संपदा।

. १६१ :

विजया

मुसकाती आ भुवन-विजयिनी विभा दिखावे ।
कर अभिमत फल-दान कल्प-लनिका बन जावे ।
रच-रच कितनी कलित ललित लीलाएँ न्यारी ।
मिले दिव्यता बन-बन कर दिवलोक दुलारी ।
सुरपुर-सुषमा विलसित शरद पलने में विजया पली ।
बरसाती वसुधा पर रहे पारिजात-कुसुमावली ।

: १६२ :

तरंग से

वसुधा पर विधुसदृश सुधा है वह बरसाता ।
वह है जलद समान जगत् का जीवन-दाता ।
वही सदा है कामधेनु कामद कहलाता ।
वही कल्पतरुतुल्य बहु फलद है बन पाता ।
जो जनरंजित हो सके भव अनुरंजन-रंग से ।
जिसका मानस हो लसित पावन प्रेम-तरंग से ।

: १६३ :

शुभ कामना

तेजस्वी रह छात्र तेज से तिमिर भगावे ।
जन-जन उर में जाग जीवनी-ज्योति जगावे ।

पाकर विभुता विश्व विभूति-बलित बन जावे ।
 गौरव-गिरि पर चढ़े विजय की ध्वजा उड़ावे ।
 सुखित सदा सब को करे सरस भावना सत्र से ।
 दीक्षित क्षत्रिय-मित्र हो पूत मित्रता-मंत्र से ।

: १६४ :

कमनीय कामना

सरस उक्ति से भरित व्यंजना से विलसित हो ।
 उसका मोहक भाव कल कुसुम-सा विकसित हो ।
 लोकहितों से बलित भावनाएँ हो सारी ।
 बने कल्पना कान्त कल्प-लतिका की क्यारी ।
 भारतसुत कमनीय कृति देश-काल अनुकूल हो ।
 भव-परिपूरित भारती भारतीयता मूल हो ।

: १६५ :

कान्त कामना

सधे ढंग से समय साधनाएँ बतलाये ।
 जगा जाति को तिमिर-पुंज में ज्योति जगाये ।
 भूलों को पथ दिखा बन्द आँखों को खोले ।
 सरस उक्ति से मलिन भूत भावों को धोले ।
 जीवन-विहीन जनरगों में नव संजीवन-रस भरे ।
 असफल समाज को सफलतामय मानव-जीवन करे ।

व्यासदेव

१

लौकिकता में जब न अलौकिकता थी आई ,
मूसा ने जब दिव्य ज्योति थी देख न पाई ;
राज-भोग को त्याग तिमिर में कर उजियाला ,
बुद्धदेव ने जब न ज्ञान-दीपक था बाला ;
जब स्वाद पा सका था नहीं कलित का न ईरान का ,
जिंदावस्ता से ग्रंथ के बहुगौरवमय गान का !

२

जब वह मरियम-सुवन न था भूतल में आया ,
जिसके पग को परस पूत योरप कहलाया ;
जब वह ज्योति न अरब-अवनि में थी जग पाई ,
जिसको पा मणिमयी मरूमही थी कहलाई ;
उस काल वेद-आलोक से आलोकित भारत-धरा ,
कर लाभ एक नर-रत्न को बनी पुनीत-कलेवरा ।

३

वे थे दिव्यस्वरूप भारती के सुत प्यारे ,
भारतीय साहित्य-जगत् के उज्ज्वल तारे !
संस्कृति के सर्वस्व आर्य-सभ्यता-विधाता ,
थे पावन आदर्श के अलौकिक व्याख्याता !
विज्ञान-ज्ञान-विस्तार के वे अपूर्व आधार थे ,
अनुभूत भावना से भरित भक्तिभाव-अवतार थे !

४

राजनीति ने परम रुचिर रंजनता पाई ,
कूटनीति में कालकूटता नहीं समाई ।
हित की बही समाज-नीति में सुंदर धारा ,
मानव मानव बना 'मिले सद्भाव-सहारा ।
उनकी विभूतिमय लेखनी-बल से बली बला टली ,
बालुका-बलित मरु-मेदनी सरस बनी फूली-फली !

५

वेदों से जो बही ज्ञान की अनुपम धारा ,
सारा भूतल सिक्त हुआ जिसके रस द्वारा ।
उनसे जो आलोक लोक-लोचन ने पाया ,
जिससे भव का तिमिर-पुंज टलता दिखलाया ।
उनके प्रसार के हैं सरस साधन सत्यवती-सुअन ,
यदि वे हैं सौरभ-सदृश तो ये हैं वर वाहक पवन ।

६

है आदिम इतिहास मनुज-कुल का बतलाता ,
फिर क्रमशः है सकल समुन्नति-कथा सुनाता ।
जीवन का कह तत्त्व गीत है भव के गाता ,
पूत महाभारत है पंचम वेद कहाता ।
उसकी नाना सूक्तियाँ हैं समृद्धियों से भरी ,
हैं भुक्ति-मुक्ति की सहचरी हैं भवसिन्धु तरण-न्तरी ।

७

व्यासदेव के लिखे महाभारत के अक्षर ,
सुधा-भरे हैं अतः असित होकर हैं सिततर ।

मसि द्वारा जो हुआ, वह नहीं असि कर पाती ।
 अमर बनी है मरणशील मानव की थाती ।
 है सरस असरता लेखनी से यद्यपि उत्पन्न है ,
 वह जड़ होकर भी जीवनी दिव्य शक्तिसम्पन्न है ।

८

है उसमें वह दिव्य ज्योति अनुभूति विलोकी ,
 जैसी अपर न जगत-विलोचन ने अवलोकी !
 परम अलौकिक मधुर गान उसमें वह पाया ,
 जैसा अब तक समय कान को नहीं सुनाया ।
 किसने सुन पाई कहाँ पर वैसी स्वर-लय से सजी ,
 जैसी है वीणापाणि की वर वीणा उसमें बजी ।

९

किसने रच वेदान्त वेद का तत्त्व बताया ,
 किसने गिरा अतीत-गीत गौरव से गाया ।
 प्रकृत प्रगति कर लाभ भेद भवपति का पाया ,
 किसने सारी गहन गुत्थियों को सुलभाया ।
 किसने नास्तिकवाद की की कठोर आवर्जना ,
 ज्ञान उच्चतम शिखर पर किसने की गुरु गर्जना ।

१०

हैं पुराण के प्राण गीत गीता के गायक ,
 भारत-भू के पूत भूत-आदर्श-विधायक ।
 वसुंधरा-दार्शनिक-वृन्द के वन्दित नायक ,
 अवनीतल की वर विभूतियों के उन्नायक ।
 बहुपूजित सम्मानित नमित ऐसे कहीं न और हैं ,
 वसुधा के बुधजनों के व्यासदेव सिरमौर हैं !

: १६७ :

गो-गौरव

भारत-श्रवणी अन्न बहुत-सा है उपजाती ।
इसीलिये है कनक-प्रसविनी मानी जाती ।
इसी अन्न से तीस कोटि मानव पलते हैं ।
तथा तमभरे सदन मध्य दीपक बलते हैं ।
गो-सुत गात-विभूति से अन्नराशि उद्भूत है ।
भारतीय गौरव सकल गो-गौरव-संभत है ।

: १६८ :

आकाश-वाणी

अमा-निशा थी अंधकार था घिरता जाता ।
घनीभूत घन घूम-घूम कर था घहराता ।
तारापति के सहित तिरोहित तारक-चय था ।
विकट बनी थी प्रकृति बड़ा विकराल समय था ।
उस काल यह करुण रव हुआ हाय, हमारी कामना !
फिर सुना उदय होगा द्युमणि करो प्रबलतम सामना ।

: १६९ :

प्रेमा

मन-मन में है मैल कलह कल-कल है फैला ।
है जन-जन का पेट बना पातक का थैला ।
बिछा स्वार्थ का जाल कपट का बजा नगारा ।
घर-घर में है आज बैर की बहती धारा ।

भावुकतामय जीवन बना भले भाव उर में भरो ।
आओ प्रतीतिप्रिय वादिनी प्रेम-निलय भारत करो ।

: २०० :

विजया

कायरता कर दूर कलह-प्रियता को टाले ।
नियम सहित निर्जीव जनों में जीवन डाले ।
फूँके अति कमनीय मंत्र जनता-कानों में ।
जिससे बल आ जाय जाति-हित की तानों में ।
तमपूरित नाना भवन में अभिनवतम आभा भरे ।
आकर के विजया अनय पर विजयी भारत को करे ।

: २०१ :

हिन्दी-भवन

विश्व-प्रेम का पूत मंत्र सब काल सुनावे ।
जन-जन में विद्यानुराग का भाव जगावे ।
हृदय-हृदय में त्याग-भावनाएँ भर देवे ।
कर वर काव्य-प्रचार देश का दुख हर लेवे ।
जीवन-दायक हो जाति का कर संचालित हित पवन ।
कमनीय भारती-अंक में परिपालित हिन्दी-भवन ।

: २०१ :

कीर्ति-कल्लोलिनी

दिखला कर निज कान्ति कभी है मुग्ध बनाती ।
कभी तिमिर में है पुनीततम ज्योति जगती ।

कभी छटा से है मानस को मोहित करती ।
 कभी रुचिर भावों को है जन-उर में भरती ।
 देखे गृहस्थ दिनमणि दमक जो है दिव्य गई गिनी ।
 बन जाती है अति उज्ज्वला लोक-कीर्ति-कल्लोलिनी ।

: २०२ :

हिन्दीदेवी-दिव्यता

भारत-सुत को भीतिरहित कर अभय बनावे ।
 हरे अज्ञता-तिमिर-ज्ञान की ज्योति जगावे ।
 पढ़ संजीवन-मंत्र जनों में जीवन डाले ।
 मति-कुंजी से रहे खोलती अनुभव-ताले ।
 भर-भर भारत-भूमि में सुरपुर की-सी भव्यता ।
 उसे दिव्य करती रहे हिन्दीदेवी-दिव्यता ।

: २०४ :

छात्रवृन्द की छात्रता

पढ़ भवहित का मंत्र मनुजता ज्योति जगावे ।
 कर कमनीया कीर्ति-भरित तमपुंज भगावे ।
 काल-प्रगति अवलोक लोक का वदन विलोके ।
 करे दिव्य फललाभ बीज सत्कृति का बोके ।
 दिखा किसी सत्पात्र-सी उपकृति-पूरित पात्रता ।
 भारत पर उत्सर्ग हो छात्र-वृन्द की छात्रता ।

: २०५ :

पूत-प्रशस्ति

उनका अतुलित ओज अयुत भुज-नर्घ-प्रहारी ।
भीत भूत को करे अभय पद का अधिकारी ।
उनका रविसम तेज पाप-तम-पुंज बिदारी ।
हो निर्जीव जनों में भी जीवन-संचारी ।
सब भीरु मानसों में भरे वीर भाव ले भूरि यश ।
भारत-भू-भार-कदन-कुशल परशुराम भगुकुल-कलश ।

: २०६ :

चातक-प्यास

उसको क्या जो सुधा सुधाधर बरसा जावे ।
उसको क्या जो घड़ी-घड़ी घन झड़ी लगावे ।
उसको क्या जो मेघ सरसता अनुपम पावे ।
उसको, क्या जो जलद बहुत-सा जल बरसावे ।
है उसका तो सर्वस्व वह जिसको जिसकी आस है ।
कब स्वाती-वारि बिना मिले बुझती चातक-प्यास है ?

: २०७ .

कर्मयोग

नयन मनुज के सदा सफलता मुख अवलोकें ।
दोनों कर बन परम कान्त सुरतरु फल लोके ।
उसको बहती मिले मरु-अवनि में रसधारा ।
वह पाता ही रहे अमरपुर-सा सुख सारा ।

कैसे ? किस साधन के किये ? तो उत्तर होगा यही ।
 सब दिनों कर्मरत जो रहा सिद्धि पा सका है वही ।
 उपाराग को लसित कर्म अनुराग बनाता ।
 कर्मसूत्र में बँधा दिवाकर है दिखलाता ।
 रजनीरंजन कर्मकान्त बन है छवि पाता ।
 अवनीतल पर सरस सुधारस है बरसाता ।
 है करती रहती विश्व को विदित कर्म की माधुरी ।
 हो तारकावली से कलित प्रतिदिन रजनीसुंदरी ।
 कैसे मिलते रत्न क्यों उदधि-मंथन होता ।
 कैसे कार्यकलाप बीज कल कृति के बोता ।
 कैसे जड़ता मध्य जीवनी-धारा बहती ।
 कैसे वांछित सिद्धि साधना कर में रहती ।
 कैसे तो वारिद वृन्द वर वारिद बरस पाते कहीं ।
 जो कर्म न होता तो रसा सरसा हो पाती नहीं ।
 गृह का त्याग न त्याग कर्म का है कहलाता ।
 बुरे भाव का त्याग त्याग है माना जाता ।
 किसी काल में कर्म-त्याग तब होगा कैसे ।
 बने रहेंगे जब दृगादि जैसे के तैसे ।
 तब तक क्या बातें त्याग की जब तक मल धोती नहीं ।
 भव कर्मरता सब इंद्रियाँ कर्मरहित होती नहीं ।
 कर्महीनता मरण, कर्मकौशल है जीवन ।
 सौरभरहित सुमन समान है कर्महीन जन ।
 तिमिरभरित अपुनीत इन्द्रियों का वर रवि है ।
 कर्म परम पाषाणभूत मानस का पवि है ।
 है कर्मत्याग की रगों में परिपूरित निर्जीवता ।
 है कर्मयोग के सूत्र में बँधी समस्त सजीवता ।



